नामधारी सिद्धान्त परिचय



संत निधान सिंह आलिम

नामधारी दरबार

श्री भैणी साहिब (पंजाब)



Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-library

Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-library has been created with the approval and personal blessings of Sri Satguru Uday Singh Ji. You can easily access the wealth of teaching, learning and research materials on Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-library online, which until now have only been available to a handful of scholars and researchers.

This new Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-library allows school children, students, researchers and armchair scholars anywhere in the world at any time to study and learn from the original documents.

As well as opening access to our historical pieces of world heritage, digitisation ensures the long-term protection and conservation of these fragile treasures. This is a significant milestone in the development of the Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-Library, but it is just a first step on a long road.

Please join with us in this remarkable transformation of the Library. You can share your books, magazines, pamphlets, photos, music, videos etc. This will ensure they are preserved for generations to come. Each item will be fully acknowledged.

To continue this work, we need your help

Your generous contribution and help will ensure that an ever-growing number of the Library's collections are conserved and digitised, and are made available to students, scholars, and readers the world over. The Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-Library collection is growing day by day and some rare and priceless books/magazines/manuscripts and other items have already been digitised.

We would like to thank all the contributors who have kindly provided items from their collections. This is appreciated by us now and many readers in the future.

Contact Details

For further information - please contact

Email: NamdhariElibrary@gmail.com

kirpal singh dhana

१ ओंकार

श्री सत्गुरू राम सिंह जी सहाय

नामधारी सिद्धान्त परिचय

लेखक

संत निधान सिंह आलिम

अनुवादक

जसपाल कौर

नामधारी दरबार

श्री भैणी साहिब (पंजाब)

NAMDHARI SIDHANT PARICHAY
By
SANT NIDHAN SINGH AALIM
(1881-16 Oct. 1956)

प्रथम संसकरण: 2000

मूल्य	:	20 रुपये
प्रकाशक	:	नामधारी दरबार श्री भैणी साहिब-141126 लुधियाना (पंजाब)
टाईप सैटिंग	:	आईकान प्रिंटोग्राफिक्स
मुद्रक	:	रामा कृष्णा प्रैस

आलिम जी की अन्य रचनाएँ

हिन्दी – क्रान्तिकारी सत्गुरु
– सिक्ख धर्म एवम् मांस

पंजाबी – जुग पलटाऊ सत्गुरु
– गुरु पद प्रकाश-तीन भाग
– सिक्ख धर्म ते मास
– रुहानी टेलिफोन
– गुरु दर्शन
– नामधारी सिद्धान्त प्रदर्शन

१ ओंकार

श्री सत्गुरु राम सिंह जी सहाय

जैसा सत्गुरु सुणींदा तैसो ही मैं डीठु

यद्यपि मनुष्य कितनी ही कहानियाँ पढ़ ले, सुन ले, अनेकों महापुरुषों का जीवन परिचय प्राप्त कर ले, कितने ही गुरु-पीर फकीरों की गाथाएँ व साखियाँ पढ़ता जाए, सभी का वह प्रभाव, वह ग्रहण नहीं कर पाता जो कुछ वे, महान् लोग होते थे।

मैं अपने पिता जी के संग सत्गुरु प्रताप सिंह जी तथा उस समय की सत्गुरु जी की साध-संगत के दर्शनार्थ-जाया करता था। अपने पिता जी से, जत्थेदारों से, साधूजनों से सत्गुरु जी की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनता रहता था। मैं सत्गुरु की सामर्थ्य, सर्वज्ञता तथा सर्वश्रेष्ठता के बारे में भी सुनता रहा। सत्गुरु प्रताप सिंह जी के प्रियजनों से यह भी सुना कि बड़े बाबा जी (वर्तमान सत्गुरु जगजीत सिंह) बहुत ही गम्भीर प्रकृति के स्वामि हैं। वह सत्गुरु प्रताप सिंह जी को उसी प्रकार प्रिय है जिस प्रकार गुरु रामदास जी को गुरु अर्जुन देव जी प्रिय थे। गुरु अर्जुन देव जी की भाँति :

'इक घड़ी न मिलते ता कलजुग होता

....

तेरा मुख सुहावा जीऊ सहज धुनि बाणी।

कहने वाले थे। परन्तु मैं इस बात को साधारणतया आम बात समझ कर सुन लेता था।

मुझे पिताजी की तीक्ष्ण बुद्धि का, सत्गुरु जी के अभिन्न सान्निय, सत्गुरु प्रताप सिंह जी की भविष्यवाणी का आभास तथा ज्ञान उस समय हुआ जब 1956 ई. में श्री सत्गुरु प्रताप सिंह जी शरीर करके इस लोक में नहीं रहे। परम-पिता परमात्मा की ज्योति में समा गये। पिता जी

1956 से कुछ वर्ष पहले ही पूर्व भविष्यवाणियों के कारण सत्गुरु जगजीत सिंह जी के चरण कमलों में स्थान प्राप्त कर चुके थे जो उस समय बड़े बाबा जी के रूप में थे। पिता जी की वाणी आज तक मेरे कानों में गूँजती रहती है कि बड़ा काका ही सत्गुरु प्रताप सिंह जी का स्वरुप हैं। यह ही गुरुगद्दी का अगला उत्तराधिकारी है। इनमें तथा इनके पिता श्री सत्गुरु प्रताप सिंह जी में रत्ती भर भी अन्तर नहीं समझना चाहिये। जैसे गुरु अर्जन देव जी का अपने पिता गुरु रामदास जी से प्रेम था उसी प्रकार इनका अपने पिता जी, श्री सत्गुरु प्रताप सिंह जी से अन्यि प्रेम है। जैसे गुरु रामदास जी ने अपने जीते जी ही, गुरु अर्जन देव जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, उसी प्रकार सत्गुरु प्रताप सिंह जी ने 'बाबा' जगजीत सिंह जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया।

इन सब का आभास मुझे उस समय हुआ जब मुझे गुरु जगजीत सिंह का सान्निधय प्राप्त हुआ। उनके व्यक्तित्व का, सर्वज्ञता का मुझे अहसास तब हुआ जब वह मेरे अन्तरीव मन तक पहुँच गया, उसने मेरे ह्रदय को झकझोर दिया। मैंने सत्गुरु जगजीत सिंह जी के बारे में जो साधू-सन्तों से जो कुछ सुन रखा था; गुरु गुणों का जिक्र, प्रचार पढ़ा-सुना था, वह गुण, सार्मथ्य, सर्वज्ञता' आपमें पूर्णतया मूर्तिमान देख कर अपने पिता जी एवम् और लोगों की तीक्ष्ण बुद्धि का अनुभव करके मेरा बैरागी हुआ मन कह उठता था कि :

जैसा सत्गुरु, सुणींदा तैसो ही मैं डीठु,
विछुड़ियां मेले प्रभु हरि दरगह का बसीठु।

(पृष्ठ 95)

मैं अपने पिता जी का ह्रदय से आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे ऐसे प्रभु के पल्लू बाँध दिया जो दरगह का स्वामी, मालिक है।

जब मैं नामधारियों या बुद्धिजनों में जाता हूँ, तो मेरे बारे में बताया जाता है कि यह सन्त निधान सिंह आलिम का बेटा है, तो वह मुझे जिस स्नेह, सत्कार से मिलते हैं उसका वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं तो अपने पिताजी द्वारा की गई मुशक्कत कारण आदरणीय, प्रिय बना हूँ अतः मुझे प्रसन्नता होती है कि ऐसे त्यागी,

बैरागी, भगवान का गुणगान करने वाले, कीर्तन करने वाले, विद्वान, स्वतन्त्रता सेनानी, सत्गुरु प्रताप सिंह तथा उस समय के बाबा जगजीत सिंह जी के प्रिय संत, सन्त निधान सिंह आलिम का पुत्र हूँ जिनका नाम देश के स्वतन्त्रता संग्राम में तथा गऊ-गरीब की रक्षा के लिए संघर्षरत्त लोगों में लिया जाता है।

मुझे अपने पिता जी की उस रचना को, जो उन्होंने मेरे पास पांडुलिपि के रूप में छपने योग्य करके रखी हुई थी, पुस्तक रूप में छपवाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उनके द्वारा लिखी भूमिका अनुसार बाबा जगजीत सिंह जी तथा मंडी की साध-संगत की प्रेरणा द्वारा यह कृति पुस्तक रूप ले सकी। यह रचना, लिखित रूप में जून 1956 में संपूर्ण की गई थी परन्तु उनके (पिता जी) 31 अक्तूबर 1956 को स्वर्गवास हो जाने के कारण पुस्तक रूप नहीं ले सकी थी।

मैं यह किताब छपवाकर सत्गुरु जगजीत सिंह जी के पावन पवित्र चरन कमलों में अर्पण करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि वह इसे स्वीकार कर लेंगे। वह सत्गुरु प्रताप सिंह जी की भाँति ही अपना कर कमल मेरे सिर पर रख कर मुझे अनुगृहीत करेंगे तथा मेरे लिए मेरे पिता रुप ही रहेंगे।

इससे पूर्व भी मैं अपने पिता जी की छपी या अनछपी पुस्तकें सत्गुरु जगजीत सिंह जी द्वारा संगठित नामधारी दरबार को प्रकाशित करने या अनुदित करने का सर्वाधिकार दे चुका हूँ। इस पुस्तक का कापीराईट भी आप को दे रहा हूँ, सबको सूचित कर रहा हूँ कि नामधारी दरबार के अतिरिक्त आलिम जी की कृतियों को कोई और न छापे, न छपवाये तथा न ही अनूदित करे।

2.10.1998

टिक्का त्रिलोचन सिंह
आलिम निवास
45 पँजाबी बाग, पटियाला
फोन नं. 212599.

"आदिकथन"

अन्तिम रचना-हँस आत्मा द्वारा

पुस्तक नामधारी सिद्धान्त प्रदर्शन (नामधारी सिद्धान्त परिचय-हिन्दी) संत निधान सिंह जी आलिम (1889 से 1956) द्वारा रची अन्तिम पुस्तक है जो उन्होंने जून 1956 में रची। तत्पश्चात् 16 अक्तूबर 1956 को आप गुजर गये। इस पुस्तक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह कलाकृति उस पुस्तक का रेखाचित्र ही थी जिसको अभी और विस्तार से उनके द्वारा लिखा जाना था। कुछ व्यस्तता के कारण तथा सत्गुरु जी के और आदेशोंनुसार उनको कुछ और रचनात्मक कार्य करने पड़े। इसलिए इस पुस्तक का जो स्वरूप कल्पित किया गया था वह हमारे पास यद्यपि नहीं है परन्तु इस पुस्तक के रूप में जो कुछ प्राप्त है उससे हम आलिम जी की सूझबूझ, ज्ञान, तार्किक गद्यशैली, विषय सम्बन्धी पूर्ण स्पष्टता, विषय पकड़, उच्च साहित्यक प्रतिभा के बारे में सहज भाव से अनुमान लगा सकते हैं।

इस रचना से पहले आप 'गुरु पद प्रकाश' (तीन भागों में) जो एक बड़े आकार की पुस्तक है, 'सिक्ख धर्म एवम् मांस', जुग पलटाऊ सत्गुरु' जैसी पुस्तकों की रचना कर चुके थे। इसके अतिरिक्त आपने एक लम्बे समय के लिए 'कूका' 'सत्जुग' तथा 'आलिम' जैसी पत्रिकाओं का संपादन भी बड़ी सफलतापूर्वक किया तथा पाठकों से वाह-वाह लूटी।

संत निधान सिंह जी आलिम का जन्म 1889 ई० में सरदार सोहन सिंह जी के घर, जिला अमृतसर के गाँव लोपोकी में हुआ था। शीघ्र ही आप श्री सत्गुरु राम सिंह जी की अपार कृपा के पात्र संत केसर सिंह जी के प्रभाव में आ गये तथा सत्गुरु प्रताप सिंह जी की शरण में आ जाने के कारण नामधारी समाज की सेवा करने का मार्ग आपके लिए खुल गया। इसलिए आपका सम्पूर्ण जीवन नामधारी पंथ तथा लोक सेवा के नाम लगा।

स्वतन्त्रता संग्राम के बारे में कुछ कहना हो या नामधारी विश्वास अनुसार गुरमत की व्याख्या करनी हो, कूका लहर सम्बन्धित तथ्यों की

छानबीन करनी हो या तर्कसंगत व्याख्या, पत्रकारिता सम्बन्धी या सम्पादिकीय लेख लिखने हो, धर्म प्रचार हित की गई व्याख्या या गुरु कीर्तन का मधुर रस लोगों को छकाना हो, आप इन उक्तलिखित सभी कार्यक्षेत्रों में दक्ष थे तथा आपका अमूल्य सहयोग था तथा आप अविस्मरणीय कीर्ती के अधिकारी हैं। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में आपको कई वर्षों तक गुप्तवास में रहना पड़ा। इस पर भी उनके हृदय में हिलौरे मारने वाला राष्ट्रप्रेम तथा अपने ईष्ट देव श्री सत्गुरु प्रताप सिंह जी पर अगाध श्रद्धा सदैव बनी रही। इसी कारण आप 'जुग पलटाऊ सतगुरु' 'गुरुपद प्रकाश' जैसी अद्वितीय रचनाएँ रच सके जिनमें उक्तियाँ, तर्क, ठोस सबूत देकर रसीली साहित्यक शैली द्वारा अपने मत का प्रचार ही नहीं किया बल्कि पाठकों को आपने भावों के रस में गोता लगवा दिया।

संत निधान सिंह जी का मनोहारी व्यक्तित्व गुणों का मुजस्मा था। ज्ञान एवम् अनुभव, ऐतिहासिक तथ्यों की छानबीन तथा उनकी उनके अनुसार व्याख्या विधि द्वारा आपने अपने आपको पँजाबी भाषा के श्रेष्ठ गद्यलेखक तथा व्यक्तिगत साहित्यक शैली के स्वामी के रुप में सिद्ध किया है। पँजाबी गद्य साहित्य की रचना सृजन में उनका अविस्मरणीय योगदान है। इसमें उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सरल, स्पष्ट तथा उच्च पाये की रचना करते थे। तार्किक, वैज्ञानिक, भावयुक्त शैली का एक ही पुस्तक में सुमेल प्रस्तुत करने में वह सक्षम थे। 'जुगपलटाऊ सत्गुरु' नामक पुस्तक इस तथ्य का जीता जागता प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'गुरु पद प्रकाश' में तो ज्ञान के अथाह सागर में डुबकियाँ लगाते हुए विस्तार तथा व्याख्या के माणिक मोतियों द्वारा अपने मत की पुष्टि सफलतापूर्वक करते हुए खंडन-मंडन विधि द्वारा अपने प्रिय पाठकों को सन्तुष्ट किया। उनके मन में जरा भी संशय नहीं रहने दिया। इसके अतिरिक्त किसी भी श्रेष्ठ साहित्यकार की और कौन सी विशेषताएँ हो सकती हैं?

प्रस्तुत पुस्तक 'नामधारी सिद्धान्त परिचय' अपने विषय की संक्षेप पथ प्रदर्शक पुस्तक है जिसमें गुरुमत सिद्धान्तों का परिचय दिया गया है। संक्षेप में इतनी ज्ञानमयी महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है तथा संकेत किए गये हैं कि गुरुमत, सिक्ख चिन्तन सम्बन्धि सिद्धान्तों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। नाम, सत्गुरु गुरुवाणी एवम् सिक्ख रहित मर्यादा तथा

प्रचलित प्रमुख धार्मिक रीति-रिवाजों के बारे में आलिम जी ने ज्ञान सरोवर के गहरे पानी में गोते लगा कर अमूल्य माणिक मोती इस पुस्तक रूपी तश्तरी में परोस कर भेंट किए हैं उनके द्वारा जिज्ञासु तथा विद्वानों की तसल्ली हो जाती है।

आईए! इस पुस्तक के मुख्य विषयों पर नज़र मारकर विचार करें। सर्वप्रथम आपने गुरुमत के प्रथम मुख्य सिद्धान्त 'नाम' की व्याख्या की है। श्री आदि ग्रंथ साहिब का शुभारम्भ ही १ ओंकार के पश्चात् सत्नाम से होता है तत्पश्चात् जप जी साहिब के अन्तिम श्लोक की अन्तिम पंक्तियों में यह उल्लेख मिलता है :-

'जिनी नामु धिआइआ गए मश्कति घालि,
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि।'

श्री आदि, ग्रंथ साहिब में भी अन्तिम रचना रागमाला से पहले गुरु अर्जन देव जी ने मुंदावणी में अमृत नाम ठाकुर का पइओ' कहा है। श्लोक पहला, पाँचवा में तो गुरुमत के सिद्धान्तों की पूरी व्याख्या ही कर दी गई है :-

'तरस पइआ मिहरामत होई सत्गुरु सज्जन मिलिआ।
नानक नाम मिले ता जीवां तन मन थीवे हरिआ।'

आलिम जी ने गुरु अर्जन देव जी द्वारा प्रस्तुत तथा प्रसारित्त गुरुमत के नियमों अथवा सिद्धान्तों की व्याख्या की है।
'नाम' सिमरन सिक्ख धर्म का सबसे पहला मुख्य सिद्धान्त है जो गुरुप्रसाद या गुरु कृपा दृष्टि द्वारा ही प्राप्त होता है। आलिम जी अनुसार यह साक्षर-निरक्षर, ऊँचे-नीचे-प्रत्येक श्रेणियों के लोगों को, प्रत्येक उस व्यक्ति को मिल सकता है जो सच्चे दिल से सब्र सन्तोख तथा विश्वास रखकर सत्गुरु की शरण में जाता है।

इस पुस्तक में नाम के अनेकों विशेषणों, नाम प्राप्त करने की विधि, नाम से सम्बन्धित सर्गुण स्वरूप सत्गुरु की भूमिका की विस्तृत चर्चा की गई है। नाम की सबसे बड़ी देन, सौगात है जो एक शिष्य (सिक्ख) को अपने सत्गुरु द्वारा प्राप्त होती है। सत्गुरु सिक्ख के शीश पर अपना कर-कमल रख कर मर्यादापूर्वक, सनातन रीति अनुसार उसके कान में गुरुमन्त्र (नाम) देने का आदेश करता है तो उसे नाम रुपी

अमोलक रत्न प्राप्त हो जाता है। नाम अमूल्य रत्न है। अमृत, वह चाबी है जिससे सत्गुरु सिक्ख के काया रुपी किले में, अज्ञानरुपी ताले को खोलकर ज्ञानरत्न का प्रकाश करता है। पूर्ण ब्रह्मज्ञान से विभूषित श्री आलिम जी ने सत्गुरु की महिमा का व्याख्यान किया है। कैसे सत्गुरु देह स्वरुप में ईश्वरीय सत्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण है, इससे सम्बन्धित जो दस्तावेज तथा प्रमाण इस पुस्तक में दिए गये हैं, उनको पढ़कर ही हमें लेखक की विद्वता तथा ज्ञान के भंडार की जानकारी होती है। अगामी प्रकरणों में आलिम जी ने विस्तार से नामधारी पंथ में गुरुबाणी के सम्मान की विस्तृत व्याख्या, सहज तथा अखंड पाठों की विधि का वर्णन किया है। उनके तर्कों तथा प्रमाणों को पढ़कर कोई भी सज्जन यह नहीं कह सकता कि नामधारियों में गुरुवाणी का सम्मान नहीं किया जाता बल्कि सत्य तो यह है कि नामधारी साध संगत में गुरुबाणी का सर्वाधिक मान, सत्कार किया जाता है।

अगले भागों में विद्वान लेखक ने श्री सत्गुरु राम सिंह जी द्वारा चलाई हुई कूका लहर के बारे में विस्तार से चर्चा की है। यह अपनी ध ार्मिक मर्यादा तथा समाजसुधार के आंदोलन के साथ-साथ स्वतन्त्रता संग्राम का सबसे बड़ा प्रथम आंदोलन था, जो अंग्रेज साम्राज्य विरोधी जनमानस आंदोलन बना जिसकी स्वतन्त्रा संग्राम के अनेक पक्षों का आरम्भ किया जो बाद में महात्मा गाँधी जी के नेतृत्व में इंडियन नैशनल कांग्रेस ने अपनाए तथा स्वतन्त्रता संग्राम का अभिन्न अंग बने। स्मरण रहे सत्गुरु राम सिंह जी के स्वतन्त्रता संग्राम के यह सभी अंग नैशनल कांग्रेस के अपनाने से अर्ध शताब्दी पहले निश्चित कर दिए थे। 1872 ई० के मलेर कोटले के शहीदी साके ने तो परतन्त्रता के उस अन्ध कारमयी दौर में आजादी की मशाल रौशन कर दी थी। श्री सत्गुरु राम सिंह जी के जलावतान होने (प्रदेसगमन) के पश्चात् उनके अनुज श्री सत्गुरु हरी सिंह जी की छत्रछाया में अंग्रेजी सरकार के जिस दमन चक्र का शिकार नामधारियों को होना पड़ा, जिस सरकारी जब्र को इन्होंने सब्र से सहन किया, वह अपने आप में एक अद्वितीय मिसाल है। अटल प्रतापी सत्गुरु प्रताप सिंह जी के समय तो नामधारी समाज चेतन, जागरुक तथा स्वतन्त्रता संग्राम एवम् नामधारी समाज समरुप हो गये थे। संत निधान सिंह जी इसी समय की देन हैं। उनकी देशभक्ति तथा

नामधारी समाज के लिए की गई सेवा स्वयं में दूसरों का मार्ग दर्शन करने वाली शमा है। उन्होंने धर्म तथा राजनीति, दोनों को ही संजो कर रखा था। इस सम्बन्धि वर्णन इस पुस्तक में 'बाबर तथा बाबे के' प्रकरण में देखा जा सकता है 'माँस निषेध' वाले प्रकरण में आलिम जी ने स्वत: तथा प्रत: प्रमाणों द्वारा माँसाहार का खंडन किया है। उन्होंने बताया है कि अहिंसा के नियम को अध्यात्मिक मार्ग का एक बहुत बड़ा उद्देश्य निश्चित किया गया है। उनके द्वारा दिये गये इससे सम्बन्धित तर्क, दलीलें तथा प्रमाण उनकी प्रबुद्धता की साक्षी भरते हैं। इतनी बड़ी संख्या में अपने मत की पुष्टि के लिए दस्तावेज तथा प्रमाण एकत्र करना भी आलिम जी की साहित्यक मुशक्कत की ही पुष्टि करना है। एक श्रेष्ठ लेखक की भाँति पुस्तक रुपी थाल में स्थान-स्थान पर अपने भावों को गुलदस्ते की भाँति सजाकर भेंट करना उनके कला कौशल का ही विशेष, अद्वितीय प्रमाण है।

संत निधान सिंह जी आलिम का देहान्त 16 अक्तूबर 1956 को लुधियाना में हुआ था। उनकी दिमाग की नस फट गई थी। मुझे उनके इकलौते पुत्र-टिक्का त्रिलोचन सिंह ने बताया कि उस दिन वह सुबह से लेकर अपने अन्तिम क्षणों तक पढ़ने लिखने में व्यस्त रहे। उन जैसे मानव रत्न, जो निष्फल सेवा में तल्लीन रहे, जुटे रहे, कम ही पैदा होते हैं। गुरु वाक्य अनुसार :-

अंतरि गुरु अराधणा जिह्वा जपि गुरनाउ।
नेत्री सतगुरु पेखणा स्रवणी सुनणा गुरनाउ।
सतगुरु सेती रत्तिया दरगह पहिए ठाउ।
कहु नानक किरपा करे जिसनो इह वथ देई।
जग माहि उत्तम काढिआहि विरले केई केइ।

संत निधान सिंह जी आलिम ऐसे विशेष व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनकी यह पुस्तक 'नामधारी सिद्धान्त परिचय' विशेष पुस्तक है जो उन्होंने सिक्ख जगत को तथा विशेषरूप से नामधारी संगत को अपनी अन्तिम भेंट के रुप में उपहार स्वरूप दी है।

4 अक्तूबर 1998

कृपाल सिंह कसेल
पटियाला

१ ओंकार

श्री सत्गुरू राम सिंह जी सहाय

नामधारी सिद्धान्त परिचय

"अनुबंध निरुपण"

इस पुस्तक का विषय नामधारी सिद्धान्तों का परिचय मात्र है। इस मत से सम्बन्धित परिचय प्राप्त करने वाले सज्जनों की सहायता करना ही मूल उद्देश्य है। प्रेम भाव से केवल गुण ग्राहक होने की सामर्थ्य से वाचने वाले सज्जन इसके अधिकारी हैं। पुस्तक का विषय से प्रतिपादक तथा प्रतिपाद भाव संबंध हैं।

यह पुस्तक कितने परिश्रम तथा खोज का परिणाम है। इस से सम्बन्धित कुछ भी कहना या लिखना पाठको का काम है न कि लेखक का। इसमें नामधारी पंथ के सिद्धान्तों को सरलतम विधि से प्रकट करने का प्रयास किया गया है। सिद्धान्तों की पुष्टि तथा सिद्धी अर्थ श्री आदि ग्रंथ साहिब तथा दसम ग्रंथ के प्रमाण प्रमुख रूप से दिए गए हैं। श्रीमान भाई गुरदास एवम् दीवान नंद लाल जी की रचनाओं को दूसरे स्थान पर रखा गया है। सिक्ख इतिहास तथा अन्य साहित्यक ग्रंथों के प्रमाण तृतीय स्थान पर किए गये हैं। इन सिद्धान्तों की सर्वमान्यता एवम् महानता सिद्ध करने के नुक्ते निगाह से अन्य मतों के प्रमाण भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। किसी विशेष बात पर टीका टिप्पणी की आवश्यकता को ध्यान में रख कर उसे फुट नोटों द्वारा पूरा किया है।

विषय-सूची

निवेदन

पाठकों से यह नम्र निवेदन करना आवश्यक समझा गया है कि यह पुस्तक केवल अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए लिखी है। यद्यपि इसके लिखने की आवश्यकता बहुत पहले से महसूस की जा रही थी तथा कई बार कई सज्जनों द्वारा लेखक को इस बारे में प्रेरणा भी मिलती रही, परन्तु इस महान सेवा के लिए सर्वाधिक उत्साहपूर्ण प्रेरणा मंडी (हिमाचल प्रदेश) की नामधारी संगत द्वारा बसंत पंचमी सम्व्त २०११ अनुसार १९५४ ई० को प्राप्त हुई। इसी मास में बाबा जगजीत सिंह जी (वर्तमान सत्गुरु जी) ने मुझे नामधारी रहित (मर्यादा) बारे लिखने का आदेश दिया जिनके बारे में सत्गुरू प्रताप सिंह जी प्राय: आज्ञा किया करते थे कि "मेरा बड़ा काका (वर्तमान सत्गुरू जगजीत सिंह जी) पूर्ण आज्ञाकारी है तथा मेरे प्रत्येक हुक्म को पूरी तरह से समझता है तथा तहदिल से उसका पालन करता है। उसमें तथा मेरे में कोई अन्तर नहीं। वह मुझे अपनी जान से भी अधिक प्रिय है। मेरी आज्ञा के लिए उसके पास न, उत्तर तो है ही नहीं, अतः मुझे इसके होते पंथ की कोई चिन्ता नहीं है।"

इसलिए सत्गुरू प्रताप सिंह जी के आदेशों को ध्यान में रखते हुए तथा सत्गुरू प्रताप सिंह जी का उत्तराधिकारी समझते हूए मैं बाबा जगजीत सिंह जी का सत्गुरू प्रताप सिंह जी जितना ही अदब करता हूँ। इसलिए जब बाबा जी का आदेश हुआ तो मैंने उसी रात लिखने का श्री गणेश कर दिया। मेरे लिए बाबा जगजीत सिंह जी का हुक्म ही सतगुरू प्रताप सिंह जी का हुक्म था। इसलिए बाबा जी द्वारा लेखक के हृदय में इस पुस्तक की रचना का मान उत्पन्न हुआ।

– निधान सिंह आलिम
जून 1955

१
नाम सिद्धान्त

सिक्ख पंथ का प्रारिम्भक सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है नाम। सर्व सिक्ख समुदायों एवम् सृष्टि के समस्त भक्ति प्रधान पंथों में इस की मान्यता, इसका महत्व एवम गौरव प्रसिद्ध है। यदि यह कहा जाये कि नाम संसार के सभी धर्मो की आत्मा है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। सिक्ख धर्म में प्रत्येक मनुष्य चाहे वह नर है या नारी सिक्ख बनने से पहले उसके लिए नाम धारण करना अनिवार्य है। नाम, गुरूमन्त्र, गुरू उपदेश, गुरू शब्द एवम् दीक्षा आदि सभी शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची है। नाम धारण करना मनुष्य की अध्यात्मिक आवश्यकता है। जिस प्रकार देह को जीवित रखने के लिए भोजन की आवश्यकता है उसी प्रकार अध्यात्मिक शरीर को जीवित रखने के लिए नाम-भोजन की आवश्यकता है। साधू जनों की भूख-नामभूख प्रसिद्ध है। नामभूख की तृप्ति के द्वारा दु:खों तथा कष्टों का निवारण है।

"साचे नाम की लागै भूख।। उतु भूखे खाइ चलीअहि दूख।"

(रहिरास)

गुरुजी का प्रवचन है :-

"कर कासा दरसन की भूख।। मैं दरि मागउ नीता नीत।"

आदि ग्रंथ एवम् दशम् गुरू जी की बाणी में नाम की महिमा एवम् फल प्राप्ति का खूब वर्णन मिलता है। नाम जपने वाले साधू-संतों, भक्तों की अधिकाधिक उपमा की गई है। नाम को अनेकों विशेषणों द्वारा सम्मानित करते हुए उसकी महानता, उसके महत्व को स्मरण कराने का पूरा पूरा प्रयास किया गया है। कुछ गुरू प्रवचन पाठकों की जिज्ञासा के लिए लिखे जाते हैं :-

१. *नाम अमृत* : अमृत जन्म-मरण, आवागमन से मुक्ति दिलाने वाला एक अध्यात्मिक पदार्थ माना गया है। गुरु महाराज बताते हैं कि नाम ही अमृत है। यथा मुंदावणी महला ५ :-

"थाल विचि तिनि वस्तु पईओ सतु संतोखु विचारो।।
अंम्रित नामु ठाकुर का पइओ जिस का सभसु अधारो।"

"अंम्रित नामु निधानु है मिलि पीवहु भाई।"

(गउड़ी की वार महला ५)

"नउ निधि अंम्रित प्रभ का नामु।"
"अंम्रित प्रिअ का नामु मैं अंधुले टोहनी।"

(बिलावल महला ५)

२. *नाम रत्न* : रत्न एक अमूल्य वस्तु है। फारसी भाषा में इसे जवाहर की संज्ञा दी गई है। गुरु महाराज भगवान के नाम को अमूल्य रत्न कहकर सम्मानित करते हैं :-

"रतन पदारथ हरि नामु तुमारा जीउ।
तूं सचा साहु भगतु वणजारा जीउ।"

(गउड़ी महला ५)

"अंतरि अलखु न जाई लखिअ।। नामु रतनु लै गुझा रखिया,
अगमु अगोचरू सभ ते ऊचा गुर कै सबदि लखावणिआ।"

(माझ असटपदीआ महला ५)

३. *नाम तोषा* : 'तोषा' फारसी पद है। इसको 'जादिराह' भी कहते हैं : जिसका अर्थ है-'सफरखर्चा।' गुरुजी का फरमान है कि लौकिक यात्रा करने के लिए लोग खर्च बांधकर चलते हैं, परन्तु परलोक यात्रा के लिए कोई भी 'तोषा' तैयार नहीं करता। इस प्रकार की यात्रा के लिए 'नाम-रुपी तोषा' की आवश्यकता है:-

"जिह मारग के गने जाहि न कोसा,
हरि का नामु ऊहा संगि तोसा।"

(सुखमनी)

"जिह पैडै महा अंध गुबारा,
हरि का नामु संगि उजीयारा।"

४. *महारस* : "नाम महा रस पीअ।"

५. *रसायन* : "नाम रसाइण जो रत्ते नानक सच अमली।"

६. *नाम धन* :-

"एको निहचल नाम धनु होरू धनु आवै जाइ,
इसु धन कउ तसकरू जोहि न सकई न ओचका लै जाइ।"

७. *दारू अउखद* :-

"संसारू रोगी नाम दारु।"
सरब रोग का अउखदु नाम।। कलिआणु रूप मंगल गुण गाम।"

(गउड़ी महला ५)

८. *वख्वरा सौदा* : (न्यारा सौदा)

"सचु वरवरू धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरू।"

(सिरी राग महला १)

९. *नाम बीज* : "नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु।"

(सोरठि महला १)

१०. *नाम आभूषण* : "जन नानक नाम अंतवार गहिणा।"

११. *नाम खजाना* : "हम घरि नामु खजाना सदा है भगति भरे भंडारा।"

(सोरठि महला ३)

१२. *नाम मन्त्र* : "सरब कला सोई परबीन।। नाम मंत्रु जा कउ गुर दीन।"

(कानड़ा महला ५)

१३. *नाम व्यापार* :-

"सतिगुरु सेविऐ आपणा पाईऐ नाम अपारू,
भडउ जलि डूबा दिआ कढु लए हरि दाति करे दातारू।
धंनु धंनु से साह है जि नामि करहि वापारू,
वणजारे सिख्व आवदे सबदि लघावण हारू।।"

(गउड़ी की वार महला ५)

१४. *गुरुमंत्र :-*

"गुरमन्त्र हीणसु जो प्राणी धिगंत जनम भृष्टणः।
कुकर, गधपः, काकः, सर्प न तुल खलह।"

गुरमन्त्र देने की विधि

'मन्त्र' शब्द बहुत व्यापक अर्थ लिए हुए है। देवी को वश में करने के लिए मन्त्र प्रयोग किए जाते हैं; परन्तु गुरुमन्त्र अकाल पुरुख से सम्बन्धित होने के कारण सर्वोपरि मन्त्र होता है। दशम पातशाह गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा है "नमोमन्त्र मन्त्रे।" (अकाल उस्तत)

नाम या मन्त्र देने की पद्धति जो परम्परा से चली आ रही है; वह है-गुरुमंत्र अभिलाषी संतों, सतिगुरु जी के चरणों में बैठकर लिया जाता है। जब शिष्य अपने गुरु से नाम की याचना करता है तो गुरु महापुरुष उसके सिर पर हाथ रखकर कान में 'नाम-मंत्र' बता देते हैं:-

"से मत्थे निहचल रहे जिनी गुरि धरिआ हथ।
धुरि अमृत नाम पिआलिया जन्म मरन का पथ।
मनहि प्रगासु भइओ भ्रम नासिओ मंत्र दीओ गुर कान।"

इस 'नाम-मन्त्र' की फूँक जब श्री गुरु कलगीधर जी ने बैरागी बाबे माधोदास के कानों में मारी तो उसका कायाकल्प हो गया। इसका वर्णन सच्च खंड निवासी, स्वर्गवासी ज्ञानी करतार सिंह जी कलासवालिए (श्री दरबार साहिब के मुख्य ग्रंथी) की रचना 'बाबा बंदा बहादुर' में इस प्रकार मिलता है-

भांडा है पूरा गुरां देख लआ, जप वाहिगुरु नाम सुणा दित्ता।
बूंद आतमा रस दी डिगदी नू विच* गोश सदफ दे पा दित्ता।
कड़िआ दुध्ध सी सोध मुशक्तादा जाग नाम दी ला जमा दित्ता।
नज़र कीतिया संत महातमा दी सोना लोहे तो झट्ट बणा दित्ता।
दौलत ला जवाल** दी हथ्थ दे के भुक्खा जन्म दा शाह बणा दित्ता।
दया द्रिष्टि दे नाल ही संत कीता, काले काग दा रूप वटा दित्ता।
सिध्धा पहुँच जा सतवीं भूमका नूं गुरां हक्क दा राह दिखा दित्ता।
गंढ खोल के जन्म जन्मातरा दी नाल आतमा जोड़ जुड़ा दित्ता।

---

* गोश सदफ-कान रुप सीप।

** ना समाप्त होने वाला धन।

कर चानणा चित्त दी कोठड़ी नू दीवा हथ गिआन फड़ा दित्ता।
फूक कंन दे विच्च अजेही मारी बंदा गिद्दड़ो शेर बणा दित्ता।
नदरी नदर निहाल करतार सिंघा दूजा शमा थी शमा जगा दित्ता।

ज्ञानी जी बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि श्री कलगीधर जी ने आत्म-रस की बूंद बैरागी के कान-रुप सिद्ध पात्र में डाल दी। भाव यह है कि उन्होंने गुरुमंत्र दे कर उन्हें अपना बंदा बना लिया।

मंत्र पद

'मंत्र' संस्कृत का शब्द है। यह मत्री धातु से बना है। यह भाषा के गुप्त अर्थों के लिए प्रयुक्त होता है। इसका सम्बन्ध 'नाम' पाने के अधिकारी के साथ होता है इसलिए इसको गुप्त रखने का विधान चला आ रहा है। यह एक लौकिक बात है कि जब कोई किसी को भेदभरी बात बताता है तो वह कहता है-"भइया बात पर्दे की है इसलिए ज़रा करीब आकर सुन। वह जब नज़दीक आ जाता है तो बात बताने वाला कहता है-भाई! बात कान में बताने वाली है।" यद्यपि दूर से भी कानों द्वारा ही सुना जाता है। परन्तु बात के सुनने-सुनने में अन्तर होता है। राग प्रभाती में गुरुजी ने फरमाया है:-

"गुप्ता नाम वरतै विचि कलिजुग।"

'नाम-प्राप्ति' कहाँ से होती है?

प्रत्येक वस्तु के प्राप्त करने का कोई न कोई स्थान अवश्य होता है। नाम-अमृत के भंडार सतगुरु सच्चे पातशाह जी ही हैं।

"हरि अंम्रित भगति भंडार है गुर सतिगुर पासे रामराजे।"
ह्रिदै नामु सरब धनु धारणु गुर परसादी पाईऐ।"

(भैरउ महला ५)

"जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ,
राम नामु संतन घरि पाइआ।"

(सुखमनी)

"बिनु सतिगुरु दाता को नहीं जो हरि नामु देइ अधारू।
गुर किरपा ते नाउ मनि वसै सदा रहै उर धारि।।"

(सुलोक महला ३)

"नामु इसटु मीत सुत करता मन संगि तुहारै चालै।
करि सेवा सतिगुर अपुने की गुर ते पाईऐ पालै।।"

(गउड़ी महला ५)

नामधारी पंथ में नाम देने का विधान इस प्रकार है कि सत्गुरु जी द्वारा मनोनीत साधू-संत एवम् सूबे ही नाम-दान दे सकते हैं।

नाम-निवास

नाम का निवास इस पाँच तत्वों से बने शरीर रूपी नगर में ही है। यह काया-किला ही हरि-मन्दिर है। परन्तु हम अज्ञानता के ताले में बन्द हैं। इस लिए हुक्म है :-

"जिस का ग्रिह तिनि दिआ ताला कुंजी गुर सउपाई।।"
हरि का मंदरु आखीऐ काइआ कोटु गड़ु,
अंदरि लाल जवहेरी गुरमुखि हरि नामु पड़ु।"

(रामकली की वार महला ३)

"गुरमति नगरी खोजि खोजाई।। हरि हरि नामु पदारथु पाई।"

(सूही महला ५)

नाम-फल

गुरू द्वारा दिए गए नाम-मन्त्र को जपने का परिणाम मनुष्य मैं 'अंहकार' का नाश है, जिसको गुरु जी ने 'दीर्घ रोग' एवम् 'बंधन' के रुप में वर्णित किया है। गुरु द्वारा प्रदत्त 'नाम जप' दुमर्ति, अंहकार, लोभ, मोह आदि का नाश करता है तथा इससे लोक-परलोक दोनों संवरते हैं।

हरि हरि हरि नामु है गुरमुखि पावै कोइ।
हंउमै ममता नासु होइ दुरमति कढै धोइ।

(कानड़ा वार महला ४)

"हरि नामु हमारी संगति अति पिआरो हरि नामु कुलु हरि नामु परवारा।।
जन नानक कंउ हरि नामु हरि गुरि दीआ हरि हलति पलति सदा करे निसतारा।"

(वडहंस की वार महला ४)

नाम और बाणी

'नाम' तथा 'बाणी' में विशेषण और विशेष्य जैसा संबंध है। बाणी विशेषण है तथा नाम विशेष्य। बाणी 'नाम' की प्रशंसा है। इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत है। किसी पुरुष ने दो लोगों के सम्मुख यह कहा कि चीनी मीठी है। यह सुनकर एक ने तो यह जपना आरम्भ कर दिया कि चीनी मीठी होती है, चीनी मीठी होती है, चीनी मीठी होती है परंतु कई दिनों तक इस वाक्य को रटते रहने पर भी उसको चीनी का स्वाद प्राप्त न हो सका। परन्तु इसके विपरीत दूसरा मनुष्य इस वाक्य को सुनते ही दुकान पर दौड़ा गया, पैसे खर्च किए और चीनी खरीद ली। इसके बाद उसने एक चुटकी-भर चीनी, ज़बान पर रखी तथा मस्ती से झूम गया। इस प्रसंग के लिए भाई गुरुदास जी ने घनाक्षरी छन्द में सुन्दर कविता रची :-

"खांड खांड कहे जीभ, मीठो न स्वाद आवै,
अगन अगन कहै सीत न बिनास है।
बैद बैद कहे रोग मिट काहु को नाहि,
दर दर कहै कौऊ दरबै न हुलास है।
चंदन चंदन कहै उजिआरौ न प्रकास है।"

इस प्रकार 'वाणी' कथनी है तथा 'नाम' करनी, इसीलिए कबीरदास जी ने कहा है-

"कथनी कहि भरमु न जाई, सभ कथि कथि रही लुकाई।"

(कबीर जी)

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि क्या 'वाणी' को ही 'नाम' मान लिया जाए? यदि नहीं, तो क्या निरक्षर मनुष्य नाम-विहीन रह जाएगा? इस विषय में गुरु जी का विचार है कि:

"जौ प्राणी गोबिन्दु धिआयै, पड़िया अनपड़िया परम गति पावै।"

अर्थात् जो भी प्राणी गोबिन्द का भजन और ध्यान करता है, वह विद्वान, निरक्षर हृदया भी परमगति को प्राप्त कर लेता है। 'वाणी' उत्तम है सर्वश्रेष्ठ है, सुच्ची है, सत्य है तथा गुरुओं द्वारा प्रकट हुई है। यों तो आकाशवाणी भी होती है। परंतु यहाँ पर 'वाणी' का अर्थ 'आकाशवाणी' से भिन्न है। इसके अंतर्गत दातार गुरु से प्राप्त 'वाणी' का निरंतर 'पाठ' तथा 'अभ्यास' ही जीव का परमोद्देश्य माना गया है।

२
गुरु से सम्बन्धित विचार

नामधारी पंथ के मूल सिद्धान्तों में दूसरा सिद्धान्त (मानस-मूर्त) गुरु से सम्बन्धित है। गुरु से भाव मनुष्य रूपी सत्‌गुरु से है क्योंकि गुरु या सत्‌गुरु के लक्षण मानस-मूर्त महापुरुष पर ही पूरे उतरते हैं। जब से मनुष्य को परम पद की अपेक्षा भक्ति-प्राप्ति की आवश्यकता अनुभव हुई तभी से मानस-मूर्त गुरु की चरण-शरण बैठना भी अनिवार्य समझा गया। नारद मुनि जी, श्री ब्यास जी एंवम् सनातन काल के और अनेक ऋषि-मुनियों ने वेदाचार्य तथा शास्त्रज्ञ होते हुए भी शक्ति की प्राप्ति के लिए मानस-मूर्त सतगुरु के चरण परसना ही उचित समझा। 'गुरुबाणी' में से इस तथ्य की पुष्टि हेतु कुछ प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं:-

"भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ,
पुछहु ब्रहमे नारदै बेद बिआसै कोइ।"

(सिरी राग अष्टपदीयां महला १)

"गुरमुखि प्रहलादि जपि हरि गति पाई।।
गुरमुखि जनकि हरि नामि लिव लाई।
गुरुमुखि बिसिसट हरि उपदेसु सुनाई,
बिनु गुर हरि नामु न किनै पाइआ मेरे भाई।"

(रामकली की वार महला ४, पउड़ी ३)

"दैत पुतु करम धरुम किछु संजम न पड़ै दूजा भाउ न जाणै।।
सतिगुरू भेटिऐ निरमलु, होआ अनदिनु नामु वखाणै।"

(सिरी राग महला ३, पृष्ठ ६७)

"नामा छीबा कबीरु जुलाहा पूरे गुर ते गति पाई।।
ब्रहम के बेते सबदु पछाणहि हउमै जाति गवाई।।
सुरि नर तिन की बाणी गावहि कोइ न मेटे भाई।।"

(सिरी राग महला ३, पृष्ठ ६७)

"धंनै सेविआ बाल बुधि।।
त्रिलोचन गुर मिलि भई सिधि।।
बेणी कउ गुरि कीओ प्रगासु।।
रे मन तू भी होहि दासु।।"

(बंसत म. ५, पृष्ठ ११९२)

उपरिलिखित 'गुरु वाणी' उदाहरणों से दो बातें स्पष्ट रूप से सिद्ध होती हैं। प्रथम यह कि गुरु नानक देव जी से पहले कलियुग में और सतयुग द्वापर, एवम् त्रेता युग में भी गुरु परम्परा थी। द्वितीय यह कि श्री शुकदेव, श्री नारद मुनि एवम् व्यास जी जैसे वेद ज्ञाता और शास्त्रज्ञ से लेकर ध्रुव, प्रहलाद, नामदेव एवम् धन्ना आदि जैसे अशिक्षित भक्तों तक ने मानस-मूर्त गुरुओं द्वारा ही कृत-कृत्य होकर परम-पद को प्राप्त किया है। यहाँ तक कि श्रीरामचन्द्र जी तथा श्रीकृष्ण जैसी अवतार-शक्तियों को भी तत्व-ज्ञान प्राप्त करने हेतु मानस-मूर्त-गुरुओं की चरण-शरण जाना पड़ा। 'गुरुवाणी' के अध्ययन से सिद्ध होता है कि गुरु की जिह्वा सिद्ध होती है। इसी कारण उनकी जिह्वा से उच्चारित प्रवचन और उपदेशों का इतना प्रभाव दिखायी देता है। गुरु जी अपने कोमल कर-कमलों द्वारा शिष्य की पीठ थपथपाते हैं, शिष्यों को गले मिलते हैं तथा अपने मुखारबिन्द से कथा-वाचन भी करते हैं। ये सब क्रियाएँ वे अपने शिष्यों के कल्याण के लिए ही करते हैं। वे माता-पिता के रुप में भी प्रकट होते हैं। गुरु स्वयं भी भगवान का सुमरिन करते हैं तथा अपने शिष्यों से भी करवाते हैं। गुरु जी सुमिरन के द्वारा ही पाँचों भावनाओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार) को अपने वश में करते हैं। इस विचार की पुष्टि 'श्री आदि ग्रंथ साहिब' के निम्नलिखित गुरु-वाक्यों से होती है :-

१. *गुरु रसना :-*

"गुर रसना अंम्रित बोलदी हरि नामि सुहावी,

जिन सुणि सिखा गुरु मंनिआ, तिना भुख जावी।"

(तिलंग महला ४, पृष्ठ ७२६)

२. *सत्‌गुरु के चरण कमल :-*

"सतिगुरु चाटउ पग चाट।। जितु मिलि हरि पाधर बाट।।"

(कानड़ा महला ४, पृष्ठ १२९)

३. "सरब सुखा गुर चरना।।

कलिमल डारन मनहि सधारन इह आसर मोहि तरना।"

(देव गंधारी महला ४, पृष्ठ ५५१)

४. *गुरु-हस्त :-*

"मै सुखी हुं सुखु पाइआ।। गुरि अंतरि सबदु बसाइआ।

सतिगुरि पुरखि विखालिआ मसतकि धरि कै हथु जीउ।"

(सिरी राग महला ५)

"हउ गोसाई दा पहिलवानड़ा, मै गुर मिलि उच दुमालुड़ा।

सभ होई छिंझ इकठीयां, दयु बैठा वेखै आपि जीउ।

वात वजनि टंमक भेरीआ, मल लथे लदे फेरीआ।

निहते पंजि जुआन मैं गुर थापी दिती कंडि जीउ।"

(सिरी राग महला ५, पृष्ठ ७४)

५. *सत्‌गुरु नाम, ज्ञान और सूझबूझ देने वाला होता है :-*

"सति पुरखु जिनि जानिआ सतिगुरु तिस का नाउ।।

तिस कै संगि सिखु उधरै नानक हरि गुन गाउ।"

(सुखमनी)

६. *गुरु ब्रह्मज्ञानी होता है :-*

"ब्रहम बिदे सो सतिगुरु कहीऐ हरि हरि कथा सुणावै।।
तिसु गुर कउ छादन भोजन पाट पटंबर।
बहु बिधि सति करि मुखि संचहु तिसु पुंन की फिरि तोटि न आवै।
सतिगुर देउ परतखि हरि मूरति जो अंम्रित बचन सुणावै।

नानक भाग भले तिसु जन के जो हरि चरणी चितु लावै।"

(मल्हार महला ४)

७. *गुरू का पिता, माता तथा वंश :-*

"धनु धंनु पिता धनु धंनु कुलु
धनु धंनु सु जननी जिनि गुरु जाणिआ माई।
धनु धंनु गुरु जिनि नामु अराधिआ,
आप तरिआ जिनी डिठा तिना लए छडाइ।"

(आदि ग्रंथ पृष्ठ ३१०)

३
'नामधारी' और 'वाणी'

नामधारी-पंथ में गुरुवाणी का अत्याधिक सम्मान किया जाता है। इस समुदाय की नींव ही 'नाम' 'वाणी' पर रखी गई है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी संस्कारों में श्री आदि ग्रंथ साहिब का पाठ करना अनिवार्य है। इस ग्रंथ का व्यष्टि तथा समिष्ट रूप में निरन्तर पाठ किया जाता है। पाठ-स्थान पर मिट्टी का तेल जलाकर प्रकाश करना नामधारी मर्यादा के अनुकूल नहीं है। कोई नामधारी श्री आदि ग्रंथ साहिब का पाठ करने के लिए जूतों वाले पावों को धोए बिना आसन ग्रहण नहीं कर सकता। लड़के-लड़की के विवाह के लिए यह नियम लागू होता है कि दम्पत्ति श्री आदि ग्रंथ साहिब का पाठ करने के आदी हों। तब उन्हें विवाह-सूत्र में बंधने की आज्ञा सत्‌गुरु जी से शीघ्र मिल जाती है। विवाह से पूर्व लाँवा फेरों पर बैठने से पहले श्री आदि ग्रंथ साहिब से पाठ करवाकर वर-वध की परीक्षा ली जाती है। यदि दोनों में से कोई एक इस परीक्षा में असफल हो जाए तो उससे पाँच सौ रुपये नकद राशि दंड के रुप में लेकर शादी कर दी जाती है। उस पक्ष के जिम्मेदारी लेने वाले व्यक्ति को इस बात की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है कि अमुक समय तक पाठ करने की कमी पूरी कर दी जाएगी। यदि कोई इस बात की जिम्मेदारी नहीं लेता तो शादी-ब्याह मुलतवी कर दिया जाता है। इस मर्यादा का प्रचलन इसलिए किया गया है ताकि नामधारी-परिवारों में कोई भी व्यक्ति श्री आदि ग्रंथ साहिब के पाठ से वंचित न रह जाए। श्री सत्‌गुरु प्रताप सिंह जी ने तो अब यह नियम लागू कर दिया है कि लड़का-लड़की (वर-वधु) स्वयं श्री आदि ग्रंथ साहिब का पाठ क़रके आएँ। आनन्द-कार्य समय (विवाह के समय) पाठ करने के बाद प्रसाद वितरण किया जाए (भोग डाला जाए)।

अखंड पाठ

नामधारी पंथ की मर्यादा के अनुसार श्री आदि ग्रंथ साहिब के आरम्भ से लेकर अन्त तक निरन्तर चलते रहने वाले पाठ को 'अखंड-पाठ' कहा जाता है। पाठ करने की यह मंर्यादा नामधारी-पंथ के संचालक श्री सत्‌गुरु रामसिंह जी की पवित्र एवम् अमूल्य देन है। इसके संचालक हजूर महाराज जी हैं। इस पाठ की मर्यादा बहुत ही स्वच्छ है। चार पाठ करने वाले पाठी, चार धूप जलाने वाले धूपिए, दो पहरेदार एंवम् दो खाना पकाने वाले लांगरी, ये बारह गुरुमुख इक्टठे हो कर इस पाठ को कर सकते हैं। प्रत्येक पाठी के साथ एक धूप जलाने वाला बैठता है। वह धूप जलाए रखता है तथा जपुजी साहिब का पाठ निरन्तर करता रहता है। वह बेर की लकड़ी पर चम्मच द्वारा घी की आहुति डाल कर लकड़ी से अग्नि को प्रज्ज्वलित किए रखता है। पाठ आरम्भ करने से पहले पाठ करने वाले सभी सदस्यों को अमृतपान कराया जाता है। (चाहे उन्होनें पहले छका हुआ ही क्यों न हो।) वह स्थान जहाँ पाठ रखा जाता है, यदि कच्चा हो तो उसे मिट्टी से लीप-पोत कर; यदि पक्का हो तो जल से धोकर सुच्चा करके पाठ के लिए सुरक्षित कर लिया जाता है। इसके साथ ही उसकी सीमा भी निश्चित कर दी जाती है। कुएँ के जल से सोध का स्नान (शुद्ध स्नान) सोध के वस्त्र (शुद्ध वस्त्र) पहने बिना कोई भी पाठ करने वाला या दूसरा व्यक्ति उस सीमा के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता। कुम्भ (घड़े) में सोध का जल (शुद्ध जल) भरकर रखते हैं। घी की अखंड ज्योति आरम्भ से अन्त तक प्रज्ज्वलित रखने का भी नियम है। कुम्भ पर सफेद-सोध के (शुद्ध) रुमाल में एक सूखा नारियल लपेट कर रखने का भी नियम है। श्री आदि ग्रंथ साहिब की ज़िल्द भी चमड़े की नहीं होनी चाहिए। रुमाल भी कुएँ के पानी से धोकर शुद्ध करना अनिवार्य है। फर्श पर भी शुद्ध वस्त्र बिछाने का नियम है। यह शुद्ध वस्त्र प्राय: रेशमी होता है। पर ऊनी वस्त्र से, घास-फूस पर बिछा कर काम लिया जाता है। काले, नीले रंग के कपड़े बिछाना भी वर्जित है। पाठ में शामिल होने वाले के भी सौध के वस्त्र होने चाहिए। रात्रि समय शुद्ध देसी घी की ज्योति के प्रकाश में या बिजली के प्रकाश में पाठ करने का विधान है। सरसों के तेल, मिट्टी के तेल के दीए या लैम्प जला कर, उसके

प्रकाश में पाठ करने की रीति को नामधारी-पंथ में बाणी का सख्त अपमान करना माना जाता है। पाठ आरम्भ करने से पहले सवा रुपया दर्शन भेंट के रुप में रखा जाता है। धूप जलाने वाले धूपिए के पास जपुजी साहिब की सैंची या पंचग्रंथी रील (टिकटी) पर रखी जाती है जो लकड़ी की बनी होती है। पर चौकी नहीं होती। त्रिहावल (घी, आटा और चीनी तीनों को बराबर मात्रा) का कड़ाह-प्रसाद तैयार करके पाठ आरम्भ करने की अरदास (प्रार्थना) की जाती है। प्रार्थी के मुख से यह शब्द निकलते ही - 'सच्चे पातशाह आपकी कृपा से अखंड पाठ का आरम्भ किया जाता है', सिक्ख पाठ आरम्भ कर देता है तथा धूपिया सिक्ख भी साथ ही जपुजी साहिब का पाठ आरम्भ कर देता है। बारी समाप्त होने पर जब दूसरा पाठी तथा दूसरा धूपिया पहले का स्थान लेते हैं तो उसी तुक से पाठ जहां उन्होंने छोड़ा है, से पाठ आरम्भ करते हैं। किसी भी पाठी, धूप जलाने वाले व्यक्ति के लिए यदि वह सो गया हो या परवाने जा कर आया हो तो उसे अपनी बारी पर तत्काल शुद्ध स्नान करके बैठना अनिवार्य होता है। पहलों को छोड़कर वह अरदास करके अपना कार्य आरम्भ कर देता है। लघुशंका के समय भी उसे जल प्रयोग करना आवश्यक है। गुरु जी की आज्ञा है-"जल को लो मूत्र के पाछे।" जब पाठ आधा हो जाता है तो उस समय कड़ाह प्रसाद बनाकर बांटा जाता है। भोग के समय जब पाठी इन पंक्तियों का पाठ कर रहा होता है - अठारह दस बीस तो अरदास (प्रार्थना) करने वाला अरदास (प्रार्थना) आरम्भ कर देता है। अरदास के पश्चात् कीर्तन, आनन्द साहिब का पाठ या आवश्यकतानुसार व्याख्यान आदि होते हैं। तत्पश्चात् कड़ाह-प्रसाद बांटा जाता है। यह विधि केवल गुरुबाणी के सर्वोच्च सम्मान एवम् आदर के लिए प्रचलित है।

नोट: (1) अखंड पाठ में अमृतपान किए हुए सिक्ख ही लग सकते हैं।

नोट: (2) पाठ की अधिकतम अवधि 16 पहर है। भाव इसी अवधि के अन्तर्गत पाठ समाप्त होना चाहिए, इससे पहले आठ, दस, बारह पहरों में भी भोग पड़ सकता है।

धूप-सामग्री

धूप जलाने वाला धूपिया सिक्ख जिस धूप को जलाता रहता है उसमें निम्नलिखित वस्तुओं का सम्मिश्रण होता है :-
१. लाल चन्दन, २. सफेद चंदन, ३. छड़, ४. मुथरा, ५. इन्द्र जौं, ६. भोजपत्र, ७. सुपारी, ८. मेवा, ९. छुहारे, १०. गिरी, ११. बादाम, १२. गुग्गल, १३. केसर, १४. मुश्क कपूर, १५. लौंग, १६. तिल, १७. जौ देसी, १८. कस्तूरी, १९. सिंदूर, २०. इलायची, २१. घी, २२. चीनी (खाँड)।

गुरुवाणी का आदर

नामधारी मतानुसार गुरुवाणी सिक्खों एवम् गुरु साहिब, दोनों के लिए आदरणीय है। यही कारण है कि जहां कीर्तन हो रहा हो, वहां जब श्री आदि ग्रंथ साहिब की बीड़ लाई जाती है तो नामधारी सत्गुरु जी संगत सहित खड़े हो कर नमस्कार करते हैं। गुरुओं द्वारा गुरुबाणी का इतना अधिक अदब और महत्व स्पष्ट किया गया है कि इस के होते यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता कि 'वाणी' 'गुरु' है। 'वाणी' तो गुरुओं द्वारा भी पूज्य है। इस दृष्टिकोण से देखें तो गुरु पुजारी है तो 'वाणी' पूज्य। इसलिए गुरुवाणी को 'गुरू' कहने से उसका सम्मान कम नहीं होता, वह पूजनीय ही रहती है। हमारे सत्गुरु जी द्वारा गुरबाणी का पूर्णरूपेण सत्कार श्री मोहन जी की पोथियां लाने वाली इस ऐतिहासिक घटना से काफी हद तक स्पष्ट हो जाता है कि गुरु और वाणी का अलग-अलग क्या स्थान है, इसको समझने में किसी भी प्रकार का सन्देह या शंका रह ही नहीं जाती। कहा जाता है कि गुरुवाणी की पोथियां लाने के उद्देश्य से सर्वप्रथम भाई गुरदास जी, तत्पश्चात् बाबा बुढ़ा जी को भेजा गया परन्तु दोनों महापुरुषों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। यह तर्क दिया जाता है कि मोहन जी के समाधिलीन होने के कारण, वे उनसे बात तक भी नहीं कर सके। आखिरकार गुरु अर्जुनदेव जी ने स्वंय पदार्पण किया। आपने व्यास नदी में स्नान किया। चारों गुरुजनों के ध्यान में लीन वहाँ (चार घड़ियाँ) खड़े रहे। उसी समय गुरु अमरदास जी ने दर्शन दिए तथा कहा कि आप मोहन जी की उपासना करोगे तो आपकी इच्छा पूर्ण होगी।इतना कहकर गुरु अर्जुनदेव जी अर्न्तध्यान हो गये। तब

गुरू अर्जुन देव जी ने मोहन जी के चौबारे की ओर प्रस्थान किया। वे चौबारे के नीचे गली में धरती पर बैठ गए। सिक्खों ने दरियाँ, गलीचे पेश किए परन्तु गुरू जी ने उन पर न बैठ कर जमीन पर ही बैठे रहे। उन्होंने तंबूरा नामक साज़ के सुर मिलाये और उसे बजाने लगे और गाने लगे। 'गुरु विलास' में लिखा है :-

कुंडलियां :-

"अमर गुरू रस भाख कै भऐ सु अर्न्तधिआनु,
गुर अरजन मन सुख लयो सिरी गुर बंदन ठान।
सिरी गुर बंदन ठान मोहन कै चले चुबारै,
जाइ तहाँ निकटार गली मधि भूमि बैठारे।
कौतक, तहां निहार सिक्ख बहु बसत्र लिआए,
गलीचे दरी अपार सिरी गुर सभै हटाए।"(१८)

सोरठ :-

"तूम्बर हाथ सुधार गुर अरजन मुख कमल सौं,
कीनौ शबद उचार मोहन की उपमा लीए।"(१९)

गउड़ी महला ५ :-

"मोहन तेरे ऊचे मंदिर महल अपारा।।
मोहन तेरे सोहनि दुआर जीउ संत धरमसाला।
धरमसाल अपार दैआर ठाकुर सदा कीरतनु गावहे,
जह साध संत इकत्र होवहि तहा तुझहि धियावहे।
करि दइआ मइआ दइआल सुआमी होहु दीन कृपारा,
बिनवंति नानक दरस पिआसे मिलि दरसन सुखुसाहु।"

(आदि ग्रंथ, पृष्ठ २४८)

अमृतमयी वाणी से ओतप्रोत कीर्तन की मधुर ध्वनि उस स्थान पर पहुंची जहां मोहन जी आराधना कर रहे थे। अचानक आकाशवाणी सुनकर मोहन जी की समाधि भंग हो गई। इसके बाद उन्होंने क्रोधित होकर खिड़की में से गली की ओर देखा तो गुरु अर्जुनदेव जी को देखकर कुछ बुरे-भले वचन कहने लगे यथा- "आपने स्वयं गुरु की उपाधि लेकर घर में दरार पैदा कर दी है।"

"आप गुरु बन होइ निलज्ज बड़ो तुम ढीठ जु कोउ निहारे,
पोथिओ लेवन आए इहां तुम बीथन मैं बैठओ डिंप पसारे।"

गुरु जी ने मोहन जी के यह वचन सुनकर प्रसन्न मुंद्रा में दूसरा 'सबद' गाना शुरु कर दिया :-

"मोहन तेरे बचन अनूप चाल निराली।।
मोहन तूं मानहि एक जी अवर सभ राली।
मानहित एकु अलेखु ठाकुर जिनहि सभ कल धारीआ,
तुधु बचन शुर के वसि कीआ आदि पुरखु बनवारीआ।
तूं आप चलिआ आपि रहिआ आपि सभ कल धारीआ,
बिनवंति नानक पैज राखहु सभ सेवक सरनि तुमारीआ।

(आदि ग्रंथ, पृष्ठ २४८)

गुरू अर्जुन देव जी का 'सबद' सुनते ही मोहन जी के हृदय में कृपा की भावना आ गई तथा वे मन में सोचने लगे कि-

"समता बचन सुनाइ मनै सुख पाइओ,
गुरु बिखमता नाहि सु शांति रहाइओ।
तांते देर तिआग पोथिआ दीजीऐ,
हो निज मन महि सुख पाइ बडो जस लीजीऐ।
दोहरा : गुरू अरजन निहार कै मोहन मन सुख पाइ,
चारो गुर जोत जो इस मैं रही समाइ।।२६।।
मोहन जी तही उठे हाथ पोथिआं धार,
तीजी पउड़ी तब कही मोहन जस विसथार।।२७।।

'सबद'

"मोहन तुधु सतसंगति धिआवै दरस धिआना,
मोहन जमु नेड़ि न आवै तुधु जाहि निदाना।
जबकालु तिन कउ लगै नाही जो इक मन धिआवहै,
मनि बचनि करमि जि तुधु अराधहि से सभे फल पावहे।
मल मूत मूड़ जि मुगध होते सि देखि दरसु सुगिआना,
बिनवंति नानक राजु निहचलु पूरन पुरख भगवाना।।२।।"

(आदि ग्रंथ, पृष्ठ २४८)

"इम वाक सुने गुर अरजन के तब मोहन जी मन आनन्द पायो,
पोथीआं हाथ लै आई तबै जस बीन सुनै चल बाशक आयो।
दीनी सु पोथिआं हाथ गुरु गुरके चरना बुज सीस निवायो।
सिरी गुर सीस उठाइ कहयो अस मोहन जी तुम नही सुहायो।।३।।"

जब श्री गुरू अर्जुन देव जी ने 'सबद' का अन्तिम पद उच्चारण किया-

"मोहन तूं सुफलु फलिआ सरा परवारे,
मोहन पुत्र मीत भाई कुटंब सब तारे।
तारिआ जहान, लाहिआ अभिमानु जिनी दरसन, पाइआ,
जिनी तुधनो धंन कहिआ तिन जमु नेड़ि न आइआ।
बेअंत गुण तेरे कथे न जाही सतिगुर पुरख मुरारे,
बिनवंति नानक टेक राखै जितु तब तरिआ संसारे।"

(आदि ग्रंथ, पृष्ठ २४८)

इस श्रद्धा से ओतप्रोत और विनम्र स्वरों में गाए 'सबद' को सुनकर मोहनजी ने उन्हें 'गुरुवाणी' की पोथियाँ प्रदान कर दी। इस ऐतिहासिक प्रकरण से नामधारी सिक्खों का गुरवाणी के आदर सत्कार का सम्बन्ध भलीभांति स्पष्ट हो जाता है।

आठवें पातशाह जी के समय ग्रंथ साहिब जी को गुरु पदवी देने का प्रश्न

'गुरुवाणी' का सिंहासन गुरु पद से श्रेष्ठ तथा आदरणीय है। इसी कारण दशम् पातशाह गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा 'गुरुवाणी' को गुरु के रुप में स्थापित करने की कल्पना सार्थक नही है। इस सम्बन्ध में इतिहास की एक और घटना का ज़िक्र करना आवश्यक है। इस घटना से पता लगता है कि गुरुवाणी को गुरु का दर्जा देने का प्रश्न अष्टम गुरु श्री गुरु हरिकृष्ण जी के समय भी उठा था और वह निर्णय मानस-मूर्त गुरु के पक्ष में ही हुआ था। (ग्रंथ गुर प्रताप सूरज रास ९० अँसू ५२) श्री गुरु हरिकृष्ण साहिब आठवें पातशाह के परम ज्योति में समाने के समय संगत ने पूछा - "पातशाह! संगत को किसका पल्ला पकड़वा कर जा रहे हो।" तो गुरु जी ने आदेश दिया कि अब वे सब 'ग्रंथ साहिब' को ही गुरु मानें। संगत का प्रतिनिधित्व करते हुए भाई

गुरुबख्श जी ने नम्र निवेदन किया - 'दीन दयालु जी! मानसमूर्त गुरु के बिना संगत विचलित हो जाएगी यदि आप अपने जैसे मानस-मूर्त गुरु का पल्ला नहीं पकड़वाओगे तो सारी संगत विचलित हो जाएगी। जो आपने ग्रंथ को गुरु मानने का आदेश दिया है वह सुन लिया है। संगत ने पुनः मानने की बात तो सुन ली है परन्तु हमारी तसल्ली तो देहधारी (मानस-मूर्त) गुरु के द्वारा ही होगी। कुछ लोग सोढी लिख कर 'गुरु ग्रंथ साहिब' को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानकर उस पर कब्ज़ा कर लेंगे। अतः आप गुरु गुद्दी के उत्तराधिकारी को हमारा हाथ पकड़वाने की कृपा करें। जब गुरु जी ने यह देख लिया कि संगत ने गुरु की वास्तविक स्थिति को समझ लिया है तो उन्होंने फरमाया - "बाबा बकाले" भाव यह है कि गुरु-बाबाजी बकाला गांव में विराजमान है। वे गुरु तेग बहादुर जी, ही थे जो हिन्द की चादर के रुप में बाबा मक्खन शाह लुबाणा द्वारा प्रकट हुए थे। इस कथा से यह सिद्ध होता है कि 'ग्रंथ गुरु' का प्रश्न खड़ा करके श्री गुरु हरिकृष्ण साहिब ने पहले ही यह उदाहरण स्थापित कर दिया था कि गुरुगद्दी मानस-मूर्त सत्गुरू ही सुशोभित होती है। इसलिए जब गुरु हरिकृष्ण जी के समय निर्णय हो चुका था कि 'गुरुबाणी' नहीं बल्कि मानस-मूर्त ही गुरु हो सकता है तो दशम गुरु इस निर्णय को कैसे उल्टा सकते थे? यह बात भी एक और सच्चाई पर निर्भर करती है कि हजूर साहिब के 'ज्योति ज्योत समाने' के समय श्री कलगीधर जी के पास 'ग्रंथ साहिब' की कोई बीड़ (ग्रंथ) नहीं थी। यदि कोई बीड़ उस समय गुरु गोबिन्द सिंह जी के पास होती तो उन्होंने उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया होता और उसी 'बीड़' की आज सर्वाधिक पूजा प्रतिष्ठा होती। परंतु सत्य तो यह है कि उस समय उनके पास कोई बीड़ नहीं थी। यदि होती तो आज भी हजूर साहिब या किसी और पवित्र स्थान पर उसके दर्शन हो जाते।

नोटः-यदि 'गुरुबाणी' को गुरु मानने का नियम प्रमाणित होता तो भाई गुरुबख्श जी गुरू जी से यह विनय कभी भी न करते कि संगत गुरु बिना पक्षधर हो सकती है। और यदि उन्होंने संगत को मानस-मूर्त देहधारी गुरु का पल्ला पकड़वाने की बात न कही होती तो सारी संगत विचलित हो जाती।

राजनैतिक पक्ष

मानस-मूर्त गुरु के विरूद्ध किए जा रहे प्रचार का एक राजनैतिक पक्ष भी है, ज़िससे यह सिद्ध होता है कि 'कूका लहर' ने श्री सत्‌गुरू राम सिंह जी को पंथ का एक विश्‍वसनीय पात्र एवम् केन्द्र मान कर शासन तथा उसके पिटठुओं के विरूद्ध उत्पन्न किया था। अंग्रेजों ने अनुभव किया कि यदि सिक्खों में देहधारी गुरु की परम्परा चलती रही तो अंग्रेजी प्रशासन भी कुछ समय तक वैसे ही समाप्त हो जायेगा जैसे मुगल साम्राज्य उनके सम्मुख बाबे तथा बाबर सल्तनत का पहला इतिहास मूर्तिमान था। बाबे के सिंहासन से बाबर के सिंहासन को खतरा सबसे पहले जहांगीर को अनुभव हुआ था। उसने अपनी आत्मकथा 'तुज़के-ए-जहाँगीर' में इस बात को बड़े स्पष्ट शब्दों में वर्णित किया है तथा स्वीकार किया है कि वह गुरु अर्जुन के ऐश्वर्य और शान को इस्लाम के विरूद्ध एक शक्तिशाली दुकानदारी समझकर बंद करना चाहता है। इसलिए अपने शहज़ादे खुसरो को (जो उससे बागी हो गया था) शराण देने के बहाने गुरुजी को गिरफतार करके दो लाख रूपये जुर्माने की सजा दी तथा दीवान चन्दूलाल के सुपुर्द कर दिया और जहाँगीर बादशाह स्वंय काश्मीर को रवाना हो गया। उसने चन्दूलाल को (जो अपनी लड़की का रिश्ता श्री गुरू हरिगोबिन्द साहिब जी के लिए अस्वीकृत किए जाने के कारण गुरु अर्जुनदेव जी से सख्त नाराज़ था।) हथियार बनाकर गुरु जी को शहीद करवा दिया। अतः अब बादशाह जहाँगीर अति प्रसन्न था कि बाबे का तख्त खाली हो गया। परन्तु जब उसने यह देखा कि पंचम गुरु के सुपुत्र हरिगोबिन्द जी ने मीरी एंवम् पीरी की दो तलवारें धारण कर लीं तथा फौज़ की भरती कर ली है तथा मुगल साम्राज्य के अर्न्तगत अपना ही राज्य प्रबन्ध स्थापित कर लिया है तो वह हैरान-परेशान रह गया। गुरु जी ने अपना तख्त(अकालबुंगा) स्थापित करके मुगल साम्राज्य से युद्धों में लोहा लिया जिसके कारण शाही फौज़ों को मुंह की खानी पड़ी। उनके उत्तराधिकारी श्री हरिराय जी के पश्चात् गुरू हरिकृष्ण जी ने बाबे के तख्त को सुशोभित किया। आलमगीर औरंगज़ेब ने श्री गुरु तेगबहादर जी को केवल इसलिए शहीद करवाया था कि बाबे का तख्त खत्म करके वह निष्कंटक राज्य का सुख प्राप्त कर सके। परन्तु गुरुयाई

के उत्तराधिकारी का विधान मुगल बादशाहों की कोई पेश नहीं जाने देता था। अब बाबे के तख्त को श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने पहले गुरुओं से अधिक जोश से संभाला। गुरु जी ने बाबे के तख्त को सदा के लिए स्थापित रहने देने के विचार से अनन्त कुर्बानियाँ दीं। यहां तक कि अपना समस्त परिवार न्यौछावर कर दिया। परिणामस्वरूप कम-से-कम पँजाब में तो बादशाह का तख्त उल्टा हो ही गया जिसका आसन बाद में खालसा ने सुशोभित किया। परन्तु महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के उपरांत खालसा अपनी सिक्ख मर्यादा तथा अपने राजनैतिक मार्ग से विचलित एवम् पतित हो गया। नतीजा वही-राज-पाट छिन जाने के रूप में हुआ। बाबर का तख्त अब अंग्रेजों के स्वामित्व में था तथा वह भी यह देखकर प्रसन्न थे कि बाबे का तख्त भी अब लावारिस-सा हो चुका है। सिक्ख राजनैतिक, धार्मिक, एवम् सामाजिक तौर पर मुर्दासन्न हो गये थे। उनकी इस पहली दशा को देख कर अंग्रेज अति प्रसन्न थे परन्तु बाद में यह देख कर आश्चर्यचकित हो गये कि पंजाब के एक तेजस्वी सिक्ख ने (जो खालसा प्रशासन के समय फौज़ में फौज़ी रह चुका था) अंग्रेजों के मुकाबले में एक नई लहर चला कर बाबे का तख्त पुनजीवित कर दिया है। वह कूका लहर ही थी जो बड़े सुव्यवस्थित ढंग से जत्थेबन्द की गई थी। हर जिले में एक अफसर नियुक्त किया गया था जिसको सूबा या गवर्नर कह कर सम्मानित किया जाता था। हर तहसील में तहसील जत्थेदार, हर थाने में थाना-जत्थेदार तथा हर गाँव में 'पेंडू-जत्थेदार' काम करते थे। इन लोगों (जत्थेदारों) के द्वारा सरकारी न्यायलय, स्कूल, नौकरी, विदेशी वस्त्र, तारघर तथा डाकखाने तक का बहिष्कार किया गया था और इन्होंने अपनी ही पंचायतें, अपने ही शासक, अपने ही आश्रम एवम् अपने ही विभाग नियोजित किए थे। १८५७ ई० के वैशाखी पर्व से लेकर १८६३ ई० तक यह लहर व्यवस्थित रूप में सुनियोजित हो चुकी थी। अंग्रेज इसको एक धार्मिक या सामाजिक लहर से अधिक कुछ नहीं समझते थे। १८६३ ई० से १८७२ ई० के आरम्भ तक बर्तानवी सरकार के साथ इसकी ऐसी टक्कर हुई कि पार्लियामेंट इंगलैंड की दीवारें इसके राजनैतिक भूकम्प से कांप उठीं। सत्याग्रह एवम् असहयोग के वे आदर्श जो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने

१९२० ई० में कांग्रेस को दिए कूका लहर के संचालक श्री सत्गुरु जी ने कांग्रेस के जन्म से अनेको साल पहले ही प्रचलित कर दिए थे उनको लाखों ही नामधारी सिक्खों ने अपनी करनी में ग्रहण कर लिया हुआ था। अंग्रेज प्रशासकों को यह दृढ़ निश्चय हो गया था कि लाखों ही सिक्खों के विश्वास एवम् श्रद्धा का केन्द्रबिन्दु अब सत्गुरु रामसिंह जी कूका हैं। सतगुरू जी को अंग्रेज चिढ़कर 'कूका' नाम से बुलाते थे। इसका भाव यह था कि १८५७ ई० के पश्चात् उसने अपनी दमन नीति द्वारा और सभी सोसाइटियों की तथा व्यक्तियों की जुबानें बन्द कर दी थीं, जिसके परिणामस्वरूप कोई भी समाज या उसका कोई सदस्य अंग्रेजों के विरूद्ध एक भी शब्द कहना अपनी मृत्यु के न्योते पर हस्ताक्षर करने के बारबर समझता था। परन्तु सत्गुरु राम सिंह जी तथा उनके अनुयायी सिक्ख देश की स्वतन्त्रता के लिए नए सिरे से कूक लगाने लगे थे। इसलिए सरकारी कागज़ों में हर जगह 'नामधारी सिक्खों' को 'कूका' कह कर पुकारा गया है। बात तो यह है कि इस लहर ने सत्गुरु राम सिंह जी के नेतृत्व में अंग्रेजों के नाक में दम कर रखा था। अन्ततः सिक्खों, राजाओं, महाराजाओं, जागीरदारों, रईसों, गुरूद्वारों के महन्तों तथा पुजारियों की सहायता से अंग्रेजों ने इस लहर को कुचल देने का कार्यक्रम बनाया। परिणामस्वरूप पँजाब में 'नामधारी सिक्ख' तोपों द्वारा उड़ाये गये। कुछ फाँसी के तख्तो पर चढ़ाए गये तथा कुछ देश से निर्वसित करा दिए गये। १८१८ ई० के, रेगुलेशन ३ के आधार पर सत्गुरू राम सिंह जी को प्रयाग के किले में नजरबन्द कर दिया गया। नामधारी सिक्ख जगत को बागी करार देकर अपने अपने गाँवों तथा शहरों में ही नजरबंद कर दिया गया। पाँच से अधिक नामधारियों के इक्टठा होने पर पाबन्दी लगा दी गई थी। श्री भेणी साहिब के दरवाजे के आगे पुलिस चौकी बिठा दी गई। सत्गुरू राम सिंह जी के अनुज (छोटे भाई) श्री सत्गुरू हरी सिंह जी को परिवार सहित उनके डेरे के परिसर में ही नजरबन्द कर दिया गया। सिक्खों के लिए गुरूद्वारे के दरवाजे बंद कर दिए गए।

सिंह सभा का जन्म

अंग्रेजी प्रशासन द्वारा बाबे के इस तख्त को सदा के लिए मानस-मूर्त गुरु से खाली रखने का यह उचित अवसर समझा गया।

सिक्खों की ही सहायता से अंग्रेजों ने एक उसी प्रकार की संस्था स्थापित की, जिस प्रकार काँग्रेस के मुकाबले मुस्लिम लीग स्थापित की गई थी। इस एंगलो संस्था का नाम—'सिंह सभा' रखा गया। इसका मुख्य उद्देश्य गुरू गोबिन्द सिंह जी के बाद मानस-मूर्त गुरु-परम्परा खत्म किए जाने का प्रचार करना था। इसके साथ ही सिक्खों को अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज़ उठाने पर प्रतिबन्ध लगाना तथा नामधारी सिक्खों की स्वतन्त्रता-लहर को साम्प्रदायिक शरारती एवम् फसादियों की लहर कह कर उसे बदनाम करना आदि भी इस संस्था की स्थापना के पूवोक्ति उद्देश्य थे जिससे कि अगामी सिक्खों की नस्लें भी उनको सदा घृणा तथा हिकारत की नज़रो से देखती रहें। पूर्वोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ग्रंथ साहिब को गुरुपद देने का सूत्र बड़ा पसन्द किया गया। यह सूत्र जर्मनी के एक दार्शनिक मिस्टर मारटन लूथर की अंजील के नेतृत्व में चलने की नकल था। परन्तु अंग्रेजों तथा सिंह सभाओं के संयुक्त प्रयत्नों के बावजूद बाबे का तख्त रिक्त न हो सका। नामधारी दृष्टिकोण के अनुसार इस समय श्री सत्गुर प्रताप सिंह जी बाबे के तख्त की सेवा में लीन रहे परन्तु अंग्रेज-प्रशासन की उपज 'अंग्रेजी-सिक्ख' (जो अंग्रजी स्कूलों तथा कालेजों में पढ़कर अभी भी उसी प्रभाव के अधीन जीवन व्यतीत कर रहे है) इस ओर तिरछी नजरों से ही देखते रहे। सत्गुरू जी उन्हें सुमति प्रदान करें ताकि उनके हृदयों में एक राजनैतिक षड़यन्त्र के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए मानस-मूर्त गुरु विरोधी संस्कार नौ दो ग्यारह हो सकें।

सिंह सभा के बारे यह बात याद रखने वाली है कि श्री सत्गुरू रामसिंह जी को १८७२ ई० में देश से निष्कासित कर दिया गया था तथा बाद में १८७३ ई० में 'सिंह सभा' स्थापित की गई। सिंह-सभा के संविधान के नियम ६, ७, ८, ९ एंवम् १० का सारांश इस प्रकार है :-

१. सिंह सभा नामधारियों का विरोध करने हेतु तथा श्री सत्गुरू राम सिंह जी द्वारा संचालित अंग्रेज विरोधी लहर को प्रभाव-हीन करने के लिए स्थापित की गई थी।
२. इसकी स्थापना तथा सिक्खों के हृदयों में अंग्रेजों के प्रति वफादारी तथा उनकी गुलामी करने के भाव को कूट-कूटकर भरने के उद्देश्य से की गई थी।

३. इसकी स्थापना का उद्देश्य सिक्खों का देहधारी (मानस-मूर्त) गुरु के 'गुरुवाणी' अंकित सिद्धान्त से मुँह मोड़ना था। इसका प्रमाण निम्नलिखित है -

सिंह सभा के संविधान में अंकित है कि जो सिक्ख तख्तो से खारिज हैं या जो सरकार के द्वारा बागी तथा फसादी मान लिए गये हों वे सिंह सभा के सदस्य नहीं बन सकते। यह नियम केवल नामधारी सिक्खों के लिए ही था क्योंकि सरकार की नज़रों से वे ही उस समय बागी तथा फसादी (दंगई) माने जा रहे थे तथा उन्हें ही अकाल बूंगे के पुजारियों के द्वारा तख्तो तथा गुरद्वारों से खारिज़ कर दिया गया था।

नियम नम्बर ७ में लिखा हुआ है कि बड़ी-बड़ी पदवियों वाले अंग्रेज बहादुर इसके सदस्य बन सकते हैं।

नियम नम्बर ९ में लिखा हुआ है कि 'सिंह-सभा' में कोई भी बात सरकार/प्रशासन के खिलाफ नहीं की जाएगी। (अर्थात् यह संस्था केवल अंग्रेजों के पक्षधरों, तथा अंग्रेजी परस्त सिक्खों तक ही सीमत रहेगी)।''

नियम नम्बर १० में लिखा है - खैर खाही कौम फरमाबरदारी सरकारी।' अर्थात् 'सिंह-सभा' सरकार की भक्त एंवम् शुभ-चिन्तक रहकर सिक्ख कौम की सेवा करेगी।

उपर्युक्त नियमों से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि सिंह सभा सरकार तथा उनसे प्रभावित अंग्रेज-सिक्खों की बनाई गई सोसाइटी थी। जिसका प्रथम उद्देश्य तो अंग्रेजी शासन के पक्ष में प्रचार-प्रसार करना था, तथा दूसरा उद्देश्य उन सिक्खों के विरूद्ध घृणा का भाव पैदा करना था जिन्होंने सिक्ख राज्य को पुर्नस्थापित्त करने के उद्देश्य हेतु बलिदान दिए थे। इसके अतिरिक्त कौमद्रोही एंवम् गद्दारों को श्री गुरु ग्रंथ साहिब के श्रद्धालु कह-कह कर उन्हें कौमी नेता घोषित करना भी उस सोसाइटी का एक प्रमुख उद्देश्य था। इन कौमी नेताओं में अंग्रेजों के साथ मिल कर राज बदलवाने वाले पतंगों को तबाह करने के कारण इनाम में जागीरें भी प्राप्त की थी और उन्ही पर ऐश्वर्य का जीवन बिता रहे थे तथा मौज मस्ती कर रहे थे।

४

माँस-निषेध

नामधारी सिक्खों का तीसरा सिद्धान्त अहिंसा के नियम पर आधारित है। नामधारी पंथ के झंडे के नीचे आने वाले व्यक्ति को इस बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह किसी भी प्रकार का माँस कभी भी नहीं खायेगा। उसका आहार शुद्ध, सात्विक एवम् वैष्णव होगा। नामधारी पंथ को इस बात पर गर्व है कि उसके इस सिद्धान्त को विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त हो गई है। उसका यह सिद्धान्त आज 'जीओ और जीने दो' (Live and Let Live) के रूप में श्रीमान पंडित नेहरू (प्रधानमंत्री भारतसंघ) के पंचशील सिद्धान्त की पहली कड़ी प्रमाणित हुई है। निस्संदेह मानवीय धर्म का यह सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त संसार-भर में अमन एवम् शान्ति के सिद्धान्त के रुप में प्रतिष्ठित हो सकता है। पं० नेहरु के अथक परिश्रम द्वारा यह सिद्धान्त आज दुनिया के लगभग सभी एशियाई देशों तक पहुँच चुका है। सभी देश इस स्वर्णिम सिद्धान्त के समक्ष शीश झुका रहे हैं। बेशक यदि मनुष्य किसी का दिल भी न दुखाने का प्रण कर ले तो संसार में न फौजों की आवश्यकता रह जाएगी न अस्त्र-शस्त्रों की। यदि प्रत्येक मनुष्य हर एक व्यक्ति को अपनी जान की तरह स्वीकार कर ले तो किसी की भी गर्दन पर छुरी या तलवार चलाने का भाव ही उत्पन्न नहीं होगा। प्राचीन समय में भगवान महावीर जैन एवम् महात्मा बुद्ध जी ने इस सिद्धान्त का बड़े उत्साह से प्रचार किया। सिक्ख धर्म प्रचारक गुरु नानकदेव जी ने भी दया को धर्म की जननी होने का ज्ञान सबको दिया था। परन्तु उनके अनेको नाम लेने वाले माँस खाने के कारण दया का ही ख़ून करने के लिए तैयार-बर-तैयार रहते हैं। यदि सिक्ख धर्म को मानवता का प्रतिनिधी स्वीकार कर लिया

जाए तो उसके अनुयायियों का पशुओं पर अत्याचार करना बिल्कुल भी शोभा नहीं देता। यदि कोई व्यक्ति सिक्ख होने का दावा करता है तो उसके लिए किसी भी निर्बल या निर्दोष पर अत्याचार करना मानवता का अपमान है।

मनुष्य यदि समस्त जीवधारियों में सर्वश्रेष्ठ नस्ल का होने का दावेदार है तो उसके लिए यह बिल्कुल भी शोभनीय नहीं है कि वह अपने पेट को जानवरों का माँस खाकर कब्रस्तान बनाने की चेष्टा करे या अपनी जिह्वा के स्वाद हेतु मासूम जानवरों का कत्ल करे। यह तो सरासर स्वार्थ और अन्याय है। किसी शायर ने कहा है :-

"देख कर चलना कुचल जाए न चींटी राह में,
आदमी को बेज़बानों से भी उल्फत चाहिए।"

कई सज्जनों का विचार है कि माँस शक्तिवर्धक खाद्य पदार्थ है। परन्तु यह सर्वथा अनुचित है। डॉक्टर चूनीलाल बोस आई. एस. ओ. परीक्षक एस. बी. एफ. सी. एस, रसायनाचार्य परीक्षक बंगाल गवरनमैंट ने इस विषय पर निम्नलिखित बयान साईंस कनवैशन के सम्मुख १९१८ ई० में पढ़ा था -

एक समय था जब माँस को सर्वाधिक बल पैदा करने वाला खाद्य पदार्थ समझा जाता था परन्तु अब यह विचार बदल चुका है। *(पृ० १०४)*

जहाँ तक सिक्ख धर्म का प्रश्न है तो इसमें माँस खाना वर्जित ही नहीं, बल्कि पाप माना गया है; परन्तु इसको खाने वाले लोगों ने इस बात का प्रचार कर दिया है, जिससे माँस सिक्खों की खुशहाली का एक अनिवार्य अंग बन कर प्रसिद्ध हो गया है। उन्होंने माँस के लिए 'महाप्रसाद पद' प्रयोग करके इसकी बड़ाई करने का प्रयास किया है। बहुत साल पहले की बात है कि लेखक ने सतयुग साप्ताहिक भैणी साहिब में माँस की वर्जना सम्बन्धी लेखों का एक सिलसिला आरम्भ किया था जिसमें बताया गया था कि सिक्ख मतानुसार माँस खाना पाप है। प्रत्युत्तर में श्रीमान मास्टर तारासिंह जी, प्रसिद्ध अकाली नेता ने एक समाचार-पत्र में इस तथ्य सम्बन्धी लेख भी प्रकाशित करवाया था कि 'सिक्ख धर्म में महाप्रसाद न खाना पाप है। उस लेख में उन्होंने इस प्रकार के तर्क दिए थे कि- यदि हम महाप्रसाद नहीं खायेंगे तो मुर्गे,

बकरे आदि जानवरों की इस पृथ्वी पर इतनी वृद्धि हो जाएगी कि वह धरती पर फैल जाएंगे तथा मनुष्य को कृषि हेतु धरती नहीं मिलेगी और मनुष्य निर्बल हो जायेगा तथा उसके हृदय में फौजी भावनाएँ (लड़ाकू, जुझारू) उत्पन्न नहीं होगी। मास्टरजी के इन विचारों के उत्तर में लेखक को १६० पृष्ठों की पुस्तक लिखनी पड़ी; जिसका शीर्षक 'सिक्ख धर्म एवम् माँस' है। यह पुस्तक १९४१ ई० अनुसार १ आषाढ़ १९९८ विक्रमी को प्रकाशित हुई थी, जिसको पढ़कर सैंकड़ों महाँप्रसाद खाने वाले लोगों ने माँसाहार को सदा के लिए हाथ जोड़ कर नमस्कार कर दिया।

माँस – निषेधक प्रमाण

प्रत्येक धर्म में स्वत: प्रमाण तथा प्रत: प्रमाण दो प्रकार के ग्रंथ होते हैं। हिन्दुओं में वेद स्वत: प्रमाण तथा शास्त्र, स्मृतियाँ एवम् पुराण प्रत: प्रमाण है। इस्लाम धर्म में कुरान शरीफ स्वत: प्रमाण तथा हदीसा एवम् तवारीखी पुस्तकें प्रत: प्रमाण है। इसी प्रकार सिक्ख धर्म में गुरुवाणी स्वत: प्रमाण तथा शेष सारा सिक्ख इतिहास प्रत: प्रंमाण है। भाई गुरुदास जी और दीवान नन्दलाल की रचनाएँ पंचम तथा दशम पातशाह द्वारा स्वीकृत होने के कारण स्वत: प्रमाण की श्रेणी में ही मानी जाती हैं। विद्वान लोगों में स्वत: प्रमाण बाणी का प्रत्येक शब्द मानने योग्य होता है। इसके विपरीत प्रत: प्रमाण बाणी का वह अंश प्रमाणिक माना जाएगा जो स्वत: प्रमाण की कसौटी पर पूरा उतरता है। इस प्रकार स्वत: प्रमाण बाणी के अर्न्तगत हिंसा एंवम् माँस निषेध के विषय में प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं :-

१. श्री गुरु नानक देव जी का कथन है कि धर्म रूपी बैल दया रुपी गाय का पुत्र है :-

"धौलु धरमु दइआ का पूतु।। संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति।"

(जपुजी, पृष्ठ 1, पंक्ति 13)

२. "असंख गलवढ हतिआ कमाहि।। असंख पापी पापु करि जाहि।"

(जपुजी)

३. "भुगति गिआनु दइआ भंडारणि, घटि घटि वाजहि नाद।"

(जपुजी)

४. "दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ।"

(आसा दी वार)

५. "दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु,
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु।"

(आसा दी वार)

६. "होइ सगल की रेणुका हरि संगि समावउ,
दूखु न देई किसै जीअ पति सिउ घरि जावउ।"

(आसा दी वार)

७. "अठसठि तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवानु।"

(बाहमाह माझ)

८. साधूओं के छः लक्षणों में से एक है :-
''दयालं सरबत्र जीआ।''

(श्लोक सहस्कृति म. ५ पृ० १३५६)

९. "जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु,
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु।"

(माझ दी वार महला १, पृष्ठ १४०)

१०. "मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलाल कुराणु"

(माझ दी वार, पृष्ठ १४०)

११. "तउ नानक सरबु जीआ मिहिर भाति हो इत
मुसलमाणु कहावै।"

(माझ दी वार, पृष्ठ १४१)

१२. "हकु पराइआ नानका उसु सुअर उसु गाइ,
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाय।"

(माझ दी वार, पृष्ठ १४१)

१३. "जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई। रहाउ।।

सकता सीहु मारै पै वगै खसमै सा पुरसाई।"

(आसा महला १, पृष्ठ ३६०)

१४. "जे को नाउ धराए वडा साद करे मनि भाणे।
खसमै नदरी कीड़ा आवै जेते चुगै दाणे।"

(आसा महला १, पृष्ठ ३६०)

१५. "हथि छुरी जगत कासाई।"

(आसा दी वार, पृष्ठ २०१)

१६. "बेदु पड़ै मुखि मीठी बाणी।। जीआं कुहत न संगै पराणी।"

(गउड़ी महला १, पृष्ठ २०१)

१७. "आतमा परातमा एको करें।"

(धनासरी महला १, पृष्ठ ६६१)

अर्थात् दूसरों की आत्मा को भी अपने समान ही समझना चाहिए।

१८. "कादी कूड़ बोलि मलु खाइ। ब्राह्मणु नावै जीआ घाइ,
जोगी जुगति न जाणै अंधु। तीने ओजाड़े का बंधु।।"

(धनासरी महला १, पृष्ठ ६६२)

१९. "एकादसी इकु रिदै वसावै। हिंसा ममता मोहु चुकावै।"

(पृष्ठ १४०)

२०. "जिसु मनु मानै अभिमानु न ता कउ हिंसा लोभु विसारै।"

(सारंग महला १, पृष्ठ ११९८)

२१. "कलि होई कुते मुही खाजु होआ मुरदारू।"

(शलोक महला १, पृष्ठ १२४२)

२२. "राजे सीह मुकदम कते। जाइ जगाइन्हि बैठे सुते,
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ। रतु पितु कुतिहो चटि जाहु।"

(पृष्ठ १७९८)

मनि संतोखु सरब जीअ दइआ। इन बिधि बर्तु संपूरन भइआ।

(पृष्ठ २९९)

२३. "जीवतु मरै ता सबु किछु सूझै अंतरि जाणै सरब दइआ।
नानक ता कउ मिलै वडाई आपु पछाणै सरब जीआ।"

(रामकली सिद्ध गोष्ट महला १, पृष्ठ ९४०)

२४. "मनमुख मरहि मरि मरणु विगाड़हि दूजे भाइ आतम संघारिह।"

(राग आसा महला ३ अष्टपदी, पृष्ठ ३६२)

२५. "अंधै खावहिं बिसू के गटाक।,
अनाथ आणि उदरू ले पोखहि माइआ गईआ हाटि।
किलविख करत करत पछुतावहि कबहु न साकहि छांटि,
नानक आपन कटारी आपस कउ लाई मनु अपना कीनो फाट।"

(सारंग महला ५, पृष्ठ १२२४)

२६. "नमस्तं रहीमे नमस्तं करीमे,

(जापु साहिब)

भाव यह है कि रहम करने वाले को नमस्कार है। बखशीश करने वाले को भी नमस्कार है।

२७. "अलप अहार सुलपसी निंद्रा दइआ छिमा तन प्रीत।"

(रामकली पातशाही १०)

२८. "मज़न तेग बर खून कस बे दरेग।
तुरा नीज ओंकार खून रेज़द ब तेग़।"

(जफरनामा पातशाही १०)

अर्थात् बेदर्द निर्दयी होकर किसी का खून करने के लिए तेग न चला क्योंकि तुम्हारा खून भी अरशी तलवार से गिराया जाएगा।

२९. "जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु, अधरमु, कहहु कत भाई,
आपस कउ मुनिवर करि थापहु, का कउ कहहु कसाई।"

(मारु कबीर जी, पृष्ठ ११०३)

भाव यह है कि जीवों का घात करके कहते हो कि धर्म-कार्य किया है? तो बताओ अधर्म किसे कहोगे? (जीव घात करने वालो) तुम लोग तो मुनि हो गये या धर्मात्मा परन्तु कसाई किसको कहते हो? उनका कहना है कि जीव हत्या करने वाला धर्मात्मा नहीं कसाई है।

३०. "रोजा धरै मनावै अलहु सुआदति जीअ संघारै।
आपा देखि अवर नहीं देखै काहे कउ झख मारै।"

(आसा कबीर जी, पृष्ठ ४८३)

३१. "भाव यह है कि मोमन रखता है रोजे, अल्ला को मनाता है। परन्तु जीभ के स्वादहेतु जीव हत्या करता है। स्वयं का ध्यान तो रखता है कि उसे कोई दु:ख न दे; परन्तु वह स्वयं औरों का दु:ख नहीं देखता। फिर भला दूसरों को क्यों मारता है? कहने का मतलब यह है कि जीव हत्या करके माँस खाने वाले का उपदेश जानवर मारने के समान है।

एक तोहीद के दावेदार मुल्ला को कबीर जी उपदेश देते हुए कहते हैं कि -

"बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै।
जउ सभ महि एकु खुदाइ कहित हउ तउ किउ मुरगी मारै।"

(प्रभाती कबीर जीउ, पृष्ठ १३५०)

३२. माँस खाने के लिए जानवर जिब्हा करने को ज़ोर तथा जुल्म बताते हुए कबीर जी कहते हैं -

"कबीर जोरी कीए जुलमु है कहता नाउ हलालु।
दफतरि लेखा मागीऐ ते होइगा कऊन हवालु।"

(पृष्ठ १३७४)

३३. "कबीर जीअ जू मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु,
दफतरि दई जब काढि है होइगा कउनु हवालु।"

(श्लोक न. १९९)

३४. "कबीर ज़ोरू कीआ सो जुलमु है लेए जबाबु खुदाई।
दफतरि लेखा नीकसै मार मुहै मुहि खाइ।"

(श्लोक न. २००)

३५. “सिमरनु भजनु दइआ नहीं कीनी तउ मुखि चोटा खाहिगा।”

(पृष्ठ ११०५)

३६. “मुंद्रा मोनि दइआ करि झोली।”

(पृष्ठ ९७०)

३७. “कहतु कबीरू सुनहु रे संतहु धरमु दइआ करि बाड़ी।”

(पृष्ठ ९७०)

३८. “दइआ धरमु अरू गुर की सेवा ए सुपनंतरि नाली।”

(पृष्ठ ९७०)

३९. “कबीर खूबु खाना खीचरी जा महि अंम्रितु लोनु।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउन।”

(श्लोक न. १००)

४०. “बाट पारि घरू मूसि बिरानो पैटु भरै अप्राधी।
जिहि परलोक जाइ अपकीरति सोई अबिदिआ साधी।
हिंसा तउ मन ते नहीं छूटी जीअ दइआ नहीं पाली।
परमानंद साध संगति मिलि कथा पुनीत न चाली।”

(सारंग, पृष्ठ १२५३)

४१. “तीरथ देखि न जल महि पैसउ जीअ जंत न सतावउगो।”

(रामकली नामदेव, पृष्ठ ९७३)

४२. “जे तउ पिरीआ दी सिक हिंआउ न ठाहे कही दा।”

४३. भाई गुरदास जी :-
“शींह पुजूती बक्करी मरदी होई हड़ हड़ हस्सी।
शींह पुछै विसमाद होइ इत अवसर कित रहस रहस्सी।
बिनउ करेंदी बक्करी पुत्रर असाडे कीचनि खस्सी।
अक्क धतूरा खादिआँ कुह कुह खल उखललि विणस्सी।
मासु खानि गल वढ कै हाल तिनाड़ा कउण होवस्सी।

गरब गरीबी देह खेह ख़ाज अखाजु अकाजु करसी।
जग आइआ सब कोई मरसी।"

(वार २५ पउड़ी १७)

४४. "कुहे कसाई बक्करी लाइ लूण सीख मासु परोआ।
हस्स हस्स बोले कुहीदी खाधे अक्क हाल इहु होआ।
मास खानि गल छुरी दे हाल तिनाड़ा कौरा अलोआ।
जीभै हंदा फेड़ीआ खउ दंदा मुहु अंन विगोआ।"

(वार ३७ पउड़ी २१)

४५. "बधिक उधरे आखीअन फाही पाइ न फड़ीऐ टंगा।।
जे कसाई उधरिआ जीआ घाइ न खाईऐ भंगा।।

(वार ३१ पउड़ी ९)

प्रतः प्रमाण

१. यज्ञोपवीत संस्कार-पिता कालू गुरु नानकदेव जी का यज्ञोपवीत संस्कार करवाने लगे। पिता कालू ने क्षत्रियों की प्रचलित रीतिनुसार बकरे मंगवाए।

"भोजन हेत अंन इक ठाई। आभिख कारन छांग मंगाई।"

(नानक प्रकाश पूर्वाद्ध खंड अध्याय ९)

गुरू जी ने गम्भीरतापूर्ण कहा, पंडित जी -
पाइ सूत गर करत कूकरम, धन हित हिंसा सोहि अधरम।।
अंत प्रयंत दुष्टता धारे झूठ पिसनता चित हितकारे।।१७।।
सो खत्री दिज किधो चंडाला, सहहि जाइ जइदंड बिसाला।।
कौन जनेऊ तिह फल दीना, पाइओ नरक ईहां अघ कीना।।१८।।

अर्थात् गुरु जी ने उस संस्कार के समय बकरे आदि देख कर इसको घोर पाप बताया। ऐसा पाप करने वाला क्षत्रिय हो या ब्राह्मण उसको चंडाल का नाम दिया जाता है। अन्ततः उनके पूछने पर कि सूत का नहीं तो किसका जनेऊ पहनना उत्तम है? तो गुरू नानक देव जी ने बताया-

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु।

(महला १)

तगु कपाहहु कतीऐ ब्राह्मण वटे आइ।
कुह बकरा रिंद्धि खाइआ, सभु को आखे पाइ।

(आसा दी वार)

अर्थात् दया की कपास में से संतोष का सूत कातकर आंतों (जत) की गांठें लगाकर तथा सच्चाई का बट चढ़ा कर तैयार किया हुआ जनेऊ यदि है, तो वह मुझे पहना दो। परन्तु तुम अनेको चोरियाँ, यारियाँ, ठगियाँ, बदमाशियाँ करके कपास का जनेऊ गले में धारण करते हो और बकरों को काट कर पकाते हो और फिर खाते हो तथा दूसरे भाईयों को भी खाने के लिए कहते हो- 'आओ लाला जी भोजन करें।' ऐसा जनेऊ पहनना पाप है। इस घटना से गुरू नानक जी का मन कितना अहिंसक प्रतीत होता है। यह तो इस घटना से स्पष्ट ही है कि उन्होने माँस खाना वर्जित किया है।

२. देवलूत राक्षस

देवलूत राक्षस ने गुरु जी के चरणों में भोजन (लंगर) करने की अनुनय की। उसकी विनती के उत्तर में गुरुजी ने कहा -

'शुभ उपदेश जि लेहु हमारा। असन करहुं तब अंगीकारा।
यो नहि तुमरो खाउ कदापी। हउ सभ जीवन के संतापी।
प्रिथम तजहु आभिख कउ खाना। करहु जास हित्त जीवन हाना।

देवलूत ने नाम (गुरुमंत्र) धारण कर माँस न खाने का प्रण किया।

'केतक दिन तह रहे गुसाई। गुर सिखी की रीत चलाई।।१८।।
सब राक्षस कउ नाम जपाइओ। आभिख खान तिनै तजवायो।
जीअ घात की बान बिसारी। सति संगत करही सुख बारी।
भै तिआर जब चलने हेता। तब बोले बेदी कुल केता।।१९।।
हिंसा नहि जीवन की कीजै। सतगुर जाप जपहु दुख छीजै।।२०।।

३. राजा शिवनाभ

संगलाद्वीप से राजा शिवनाभ को नाम गुरमन्त्र देने के पश्चात् गुरू नानकदेव जी ने उनको अहिंसा-व्रत पालन करने का उपदेश देते हुए कहा -

'ऐक अहिंसा जानीऐ मन बच काइआ तीन।
पर का बुरा जि चितवना मन की हिंसा चीन।
फिक्का बोल हनाइ दुखावै। हिंसा बचनन की कहिलावै।
तीसर मारन जीवन कैरी। तिआगे इन को है बिन देरी।'

(नानक प्रकाश पूर्वाद्ध भाग अध्याय ४८, पृष्ठ ५३१)

४. माँस भक्षण के परिणाम

लाहौर शहर के महाजन दुलीचंद क्षत्रिय के घर धूमधाम देखकर गुरु नानकदेव जी ने इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि उसके पिता का श्राद्ध है। गुरु जी ने उसे बताया कि उसका पिता तो भेड़िए की योनि में तीन दिनों से भूखा बैठा है। गुरु जी ने उसको उसके पिता का स्थान, पता बताया तथा सारी युक्ति भी समझा दी। यह सब पता लगने पर महाजन थाल में भोजन-प्रसाद लेकर शहर से बाहर गया तो इसने पाँच कोस पर भेड़िया देखा। गुरु कृपा से उस भेडिये की बुद्धि मनुष्य जैसी हो गई। दुलीचन्द ने निडरतापूर्वक भोजन का थाल उसके समक्ष रखते हुए पूछा- 'पिताजी! आप तो बहुत ही शुभ कार्य करने वाले थे, फिर आपको यह योनि क्यों मिली? भेड़िए-रूप पिता ने उत्तर दिया कि 'जब मेरा अन्तिम समय आया था, उस समय आस-पास किसी ने माँस पकाया था। उसकी गंध मुझ तक पहुंची, तब मेरा दिल उसको खाने के लिए ललचाया था, जिसके फलस्वरूप मुझे यह जन्म मिला है। इसलिए हे पुत्र! तुम्हें भी चाहिए कि पूर्ण गुरु को मिलकर, दीक्षा लेकर, अपना जन्म संवार ले, (बड़ी जन्म साखी भाई बाले वाली, पृष्ठ ५६०-५६१ यह जन्म साखी खालसा गुरमति प्रैस छाहदरा में छपी थी)।

५. मक्के के इमामों को उपदेश

मक्का में हाजियों तथा इमामों को उपदेश देते हुए गुरु नानकदेव

जी ने माँस खानें का पूर्णतया: खंडन किया है। आप कहते हैं -

'जबरां मार न सक्कनी चीते शेर पलंग।
थीए हराम बहु जालमां जो मारन अग्गों डंग।
डाढिआं कोई न मारई करन जो अग्गों जोर।
जोई गरीब निमानड़े तिन्हा लैंदे माँस अधोड़।
लिखिआ चार किताब विच सब पर ज़ोर हराम।
सोई कलमें पाक जो मंने रब्ब कलाम।'

(जन्म साखी बाले वाली, पृष्ठ ५६२)

६. मदीने में चार इमामों के साथ गोष्ठी करते हुए गुरु नानकदेव जी ने कहा कि माँस खाने से बहुत ऐब होते हैं।

'लै फरमान खुदाइ दा आए मुस्लमान।
मारन गऊ गरीब नू दितो भुला शैतान।
कहिंदे पकड़ परिंदिआं और कुहिंदे जीअ।
मारन छुरीयाँ लत दे कहिण हलाली जीअ।
तुरदे फिरदे जीआं नूं देवण तुरक अज़ार।
खावण माँस हलाल कहि होवण अंत खुआर।'

(पृष्ठ २९२)

७. आगे पृष्ठ २९७ -

"हिन्दु मुस्लमान दुइ हुइ बंध निआरे दोइ।
ओहना खाधा हड मास ओह पीवन दुध लै चोइ।
जिदो जिदी आप विच हिन्दु तुरक लड़ाय।
ओहना मारिआ सूर नू ओहना मारी गाइ।
दोहां कीती हतिआ, मुए न जीवन फेर।
दरगह सच्चे रब्ब दी दुइ लै सज़ाई देर।

८. "सुणहु पीर बहाउदीन आखे नानक पीर।
बेगुनाह जो जानवरां करदे क्यों तकबीर।
जोर जुल्म हराम है सिर गरीबा सोइ।
बेजबानां नूं मारके खावै माँस जु कोइ।
जिती पैदाइश रब्ब दी कान हैवान बात।

सभना अंदर इक रब कीचन नाहीं घात।
किती शई पाक है किती शई पलीत।
नफसै कारन मारीऐ कही खदाइ हदीस।
कारन स्वादे नफ़स दे ज़ाना जिबे कराइ।
जिसनू कोई मारसी फिर ओह वी कुहसी आइ।
तंदरुस्त न मारीऐ जो फिरदा गलीआ माहि।
आई अज़ल जो गिरे सो कहे हलाली खाइ।
बाझो खाणे ताम ते खाणे होर हराम।
नफ़स रज़ाई बातली कहिआ मूल न मान।
जे करे रियाज़त बंदगी तिन्हां मॉंस न पाक।
सभना अंदर रम रहिआ हर दम साहिब आप।"

(पृष्ठ ३०६)

९. कमाल दीन ने प्रश्न किया कि यदि इन जीवों को मारा नहीं जाएगा तो समस्त धरती पर यह एक छत्र राज्य स्थापित कर लेंगे। गुरु महाराज जी ने उत्तर दिया –

'आखे नानक शाह सच्च सुणहु इमाम कमाल।
जो गालिब हुइ इनसान पर मारन तिन्हां हलाल।
गऊ भैंस ते मुरगीआं जो हैन हैवान गरीब।
तिह पर छुरी हराम है खावन तिन्हा पलीच।
जबरां मार न हंघीऐ जो करन अगों ते ज़ोर।
जिस पर ज़ोरा नां चले देण हराम कर छोर।
खाधिआं मास गुनाह है जोरी कीआ हलाल।
जोरी कुट्ठा हराम है तिसते होइ ज़वाल।'

१०. पृष्ठ ३०८ दर्दी दरवेश –

'तउरेत अंजील जंबूर फ़रकान। चारे कूकण ज़ोर हराम।
अल्ला फ़रमाइआ मंने न कोइ। आखर वकत निबेड़ा होइ।
बेजबान पर छुरी हराम। किआमत लेखा रिहा अमान।
जैसा करे तैसा ही पावै। हथो हथी झगड़ चुकावै।
साबर दर्दवंद दरवेश। बेदरदा को किआमत पेश।

देणां लेणां छडै न कोइ। आखर वक्त निबेड़ा होइ।

११. शीहें उप्पल को उपदेश :- खंडूर साहिब से गोइंदवाल जाते हुए मार्ग में श्री गुरु अंगददेव जी को शींहा उप्पल क्षत्रिय मिल गया। वह एक सौ वकरे ले जा रहा था। गुरु जी ने पूछा कि उसने इतने बकरे क्यों इक्टठे कर रखे हैं? शीहें उप्पल ने उत्तर में कहा - पुत्र का अनुष्ठान (रीतें) हैं। इसलिए सभी अतिथियों को खाने का न्योता दिया है। उन्हें भोजन करवाना है। गुरु जी ने कहा -

'इतने जीवन हिंसा करै। पाप बिसाल आपन सिर धरै।
अव तो सुगम जानीऐ करबो। अंत महा दुख नरक परबो।
देहि सासना जम के दूत। तहां न पहुंचे बंधुप पूत।।८।।
जिन के हित अघ करम कमाहि। तहाँ न रंचक होइ सहाइ।
सुख भोगेहिंगे सघरे लोक। अपदा परे तोहि बड शोक।।९।।
धरम राइ जव कर है लेखा। लहै महा दुःख रहै न सैखा।

सतगुरू जी के वचनों को सुन शींहां उप्पल बहुत भयभीत हो गया। गुरुजी के आदेशानुसार बकरों को खुला छोड़ दिया।

"अज खलास तिस छिन अब कीने।
गुर के चरन कमल मन लीने।"

(गुर प्रताप सूरज रास १ अँसू २६)

जो सज्जन अपने स्वाद को मद्देनज़र रखते हुए कहते हैं कि गुरू अंगददेव जी के समय लंगर में माँस पकाया जाता था, वह शीहें उप्पल वाली घटना से सोच समझ सकते हैं तथा यदि गुरु जी माँस खाना पाप न समझते होते तो शीहें उप्पल को इस प्रकार का उपदश न देते, जिसे सुनकर उसने सभी बकरों को खुला छोड़ दिया। आश्चर्य की बात यह है कि गुरु जी का एक तरफ तो शीहें को यह कहना कि बकरों को मारना पाप है, जिसके परिणामस्वरूप उसे यमदूतों की मार सहन करनी पड़ेगी तथा दूसरी ओर अपने अधीन चल रहे गुरू के लंगर में माँस पकवाने के लिए जीव घात करने का आदेश देना ये दोनों बातें सर्वथा विपरीत हैं, तर्क संगत नहीं है। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। गुरु अमरदास जी की परीक्षा के समय यदि ऐसी कोई घटना घटी होने के बारे में लिखा हुआ

हो और उसके आधार पर कहना बहुत भारी भूल है तथा गुरु जी के लंगर में माँस बनाने की बात करना तो जुल्म के बराबर है। बड़ा भारी कुफर है।

१२. भाई तिलोका जी

भाई तिलोकचन्द ने छठवें गुरु हरिगोबिन्द जी से 'नाम' (गुरुमन्त्र) प्राप्त किया था। गुरू-मन्त्र देने के पश्चात् सतगुरू जी ने उसे इस प्रकार उपदेश दिया था कि -

सरबभूत आतम पिखो किसे दुखावो नाहिं।
या सम भगति न होर है सति धरो रिद माहि।

तिलोकचन्द गजनी के एक राजा का नौकर था। एक दिन उसके साथ भाई साहब शिकार खेलने गए। उनके सामने से एक गर्भवती हिरनी गुजरी। भाई जी ने घोड़ा दौड़ाकर उस मृग-हिरनी पर तलवार से ऐसा वार किया कि बच्चे सहित उस बिचारी के दो टुकड़े हो गये। तिलोकचन्द को गुरु जी का बचन याद आया। वह जीव हत्या करने पर अत्याधिक पश्चाताप करने लगा। उसने मन-ही-मन निर्णय कर लिया कि वह अबसे लोहे की तलवार धारण नहीं करेगा। उसने अपने घर जाकर लकड़ी की बनी तलवार म्यान में डाल ली। इस बात की चुगली किसी चुगलखोर निन्दक ने मुगल बादशाह से कर दी। मुगल ने सही बात जानने के विचार से अचानक ही सबकी तलवारें देखनी आरम्भ कर दीं। भाई तिलोका जी ने अपनी इज्ज़त आबरू बचाने हेतु गुरु जी के समक्ष गुप्त अरदास (प्रार्थना, बिनती) की। जब मुगल बादशाह की आज्ञानुसार भाई तिलोकाचंद जी ने काठ की तलवार म्यान में से खींचकर बाहर निकाली तो काठ की तलवार (फल) फौलादी लौहे की इस प्रकार चमकी कि दर्शकों की आँखे चौंधया गई।

सति नाम कहि तेग निकारी।
उत्तम असिजिह कीमत भारी।
तिलोके दिख धन गुर को कहा।
मुगल तेग पिख बड सुख लहा।

(गुरु बिलास पातशाही ६, अध्याय ८, छंद ८९ से १०४ तक)

झटका एवम् हलाल

कई सिक्खों का कथन है कि चार बज्जर कुरहितों में से एक कुठ्ठा खाने की कुरहित है। अमृत छकाने के समय यह निर्देश दिया जाता है कि कुट्ठा नहीं खाना। कुछ सिक्ख इसका अर्थ यह ले लेते हैं कि झटका बिना शक खा लिया जाए। परन्तु यह विचार, कल्पना उचित नहीं है। इसका कारण यह है कि एक बात तो सच है गुरबाणी में कुट्ठा पद का अर्थ मारने से लिया गया है तथा जीव घात करने की सख्त मनाही है। और हिंसा तो झटके द्वारा भी हो ही जाती है तथा हलाल द्वारा भी-

"उन झटका उन बिसमिल कीआ, दइआ दुहां ते भागी।
कहित कबीर सुनहु रे साधो अगग दुहां घर लागी।
जीआ कुहत न संगै प्राणी।"

पुनः- 'कुहि बकरा रिन्न खाइआ। सब को आखे पाइ।।'

तवारीख गुरू खालसा भाग १ के पृष्ठ ९१ से ९४ तक लिखा, गुरू नानकदेव जी द्वारा जनेऊ धारण करने का प्रकरण है। उसमें लिखा है- 'बाबे कहा पुरोहित जी आपने कपास जनेऊ कीया। न्यौता देकर ब्राह्मण बुलवाऐ। अपने स्वाद हेतु बकरा मारा। क्षत्रिय लोक हलाल नहीं झटका करते हैं और झटके द्वारा मारे गये बकरे के लिए गुरू नानक देव जी ने 'कुहि' (कोह) शब्द का प्रयोग किया है-

"कुहि बकरा रिंन खाइआ।"

तब तो गुरवाणी में कुहणा तथा झटका मारने के अर्थों में ही प्रयोग हुआ। इसलिए अमृत छकाने के समय श्री कलगीधर जी द्वारा 'कुठ्ठा न खाना।' का उपदेश माँस न खाने के अर्थों को ही, सिद्ध करता है। यदि कुंछ समय के लिए यह मान भी लिया जाए कि 'कुठ्ठा नहीं खाना' से झटका खा लेना है तो 'तुर्क स्त्री गमन ना करने' वाली बज्जर कुरहित का अर्थ यह ही होगा कि हिन्दु स्त्री बिनाशक-ऐसी कल्पना कोई भी सदाचारी तथा बुद्धिमान मनुष्य करने को तैयार नहीं हो सकता ओर तीसरी बज्जर कुरहित है- 'तम्बाकू न पीने की।' तो इसका अर्थ यहाँ लगाना महा मूर्खता की बात होगी कि शराब बिना किसी शर्म पी लेनी चाहिए।' विचाराधीन विचार यह है कि गुरू साहिबान ने हिंसा एंवम्

जीव-घात करने की सख्त वर्जना की है। तथा हिंसा झटके से भी हो जाती है और हलाल से भी-

'उन झटका उन बिसमिल कीआ दइआ दुहां ते भागी।
कहित कबीर सुनहु रे साधो अग्ग दुहां घर लागी।

महाप्रसाद

माँसाहारी सिक्ख माँस को महाप्रसाद कहकर सम्मानित करते हैं। परन्तु सिक्ख साहित्य में इसके लिए महाप्रसाद शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं किया गया है। भाई गुरदास जी ने महाप्रसाद शब्द निस्संदेह कड़ाह प्रसाद के लिए प्रयोग किया है- 'आणा महाँप्रशाद वंड छकाया।'

इसलिए साधु जनो की संगत में कड़ाह-प्रसाद ही बांटा जाता है न कि माँस। माँस जैसी घटिया वस्तु को महाप्रसाद कहना वाम पंथियों की नकल करना है। उनकी तन्त्र पुस्तकों में घटिया तथा अपवित्र वस्तुओं को उत्तम नामों से आदर देने का प्रयास किया गया है। जिस प्रकार मछली को 'जल तुम्बका', शराब को 'तीर्थयात्रा' तथा भैरवी चक्र के समय शराबी की उल्टी को खा जाने वाले को 'महासिद्ध' कहते हैं। चक्रवर्ती महापुरुष की उपमा में लिखा गया है कि शराबखाने में बैठकर जो मनुष्य शराब की बोतल पर बोतल घटक जाए, रात्रि वैश्या के घर गुज़ारे उसको चक्रवर्ती महात्मा समझना चाहिए। लिखा है :-

हाला पीवति दीक्षित सै, मंदरे शप्तो निशाय।
गणिका गृहेशु विराजते सा कोलव चक्रवर्ती।

इस प्रकार के और भी अनेकों संकेत है, जिनके द्वारा अत्यधिक नीच बातों को सुन्दर एवम् रोचक नामों से सँवारने का प्रयत्न किया गया है। इसलिए माँसाहारी लोगों द्वारा माँस पाश्विक एंवम् घटिया खुरक होने पर भी 'महाप्रसाद' का लेबल इसी विचार से लगाया गया लगता है कि इसको बुरी तथा न खाने योग्य (अभाज्य) वस्तु समझ कर खाने वालो से घृणा न की जाए।

माँस एवम् वीरता

कई सज्जनों का कथन है कि माँस खाने से वीरता का संचार

होता है। इसलिए सिक्खों जैसी फौजी नस्ल को महाप्रसाद अवश्य खाना चाहिए। परन्तु विश्वप्रसिद्ध शूरवीरों का इतिहास इस बात की केवल पुष्टि ही नहीं करता तथा खंडन भी करता है कि माँस वीरता का संचार करने वाला पदार्थ है। सिक्ख-इतिहास इस बात का साक्षी है-श्री गोबिन्द सिंह जी तथा उनके साहिबज़ादे ऐसे हालात में शहीद हुए कि उन्हें रोटी तक के लाले पड़ गये थे। उनको फाके तक करने पड़े। इतिहास द्वारा उनका माँसाहारी होना कतई सिद्ध नहीं होता। भूखे रहने के बावजूद, शाकाहारी होने के बावजूद उन जैसी फौजी शक्ति की मिसाल और नहीं मिलती। कृपालचंद उदासी, पाँच प्यारे, चालीस मुक्ते और बंदा बहादुर जैसे सेनापतियों जिन्होंने युद्धों में शत्रु के दाँत खट्टे कर दिए, बिल्कुल माँस नहीं खाते थे। भाई महताब सिंह, सुक्खा सिंह जैसे बहादुर जिन्होने मस्से रंगड़ का सिर काटकर श्री दरबार साहिब, अमृतसर की पवित्रता को कायम रखा, माँसाहरी नहीं थे। श्री सतगुरु रामसिंह जी के प्यारे सिक्ख जो अमृतसर मलेरकोटले और रायकोट में पशुओं को जिब्हा करने वाले कसाइयों को मारकर शहीद हुए थे, फाँसियों पर चढ़े, लटके, तोपों से उडाए गये, निष्कासित किए गए परन्तु माँस खाना तो दूर रहा, उन्होनें माँसाहारीयों के घर का पानी भी नहीं पीया था। १९११ ई० में सर लार्ड हार्डिंग की ताजपोशी की रस्म के समय रस्सा खींचने वाली समस्त सरकारी तथा गैर सरकारी टीमों में से जिस टीम ने वाइस राइगल टीम को भी हरा कर प्रथम दर्जे का इनाम प्राप्त किया था वह गाँव ढोटियाँ जिला अमृतसर के नामधारी-सिक्खों की टीम थी (जिन्होंने माँस को कभी देखा तक नहीं था, खाना तो दूर की बात है।) इसलिए यह बात बिल्कुल ही निराधार है कि माँस खाने से वीरता का संचार होता है। हाँ! कायरता अवश्य उत्पन्न होती है। इसका कारण यह है कि माँसाहारी अपने स्वादहेतु मुर्गे या बकरे को जब पकड़ने लगते हैं और जब मारने लगते हैं तो उनके (पशुओं) हृदय में डर पैदा हो जाता है। इसलिए ऐसे पशु का माँस खाने वाले में भी कायरता के कीटाणु अवश्य पैदा करेगा।

माँस-माँस कर मूर्ख झगड़े

कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहण के समय श्री गुरु नानकदेव जी द्वारा माँस

पकाने का प्रकरण माँसाहारी सिक्खों की शक्तिशाली लाठी बना हुआ है। परन्तु इस प्रकरण द्वारा माँस खाने की सिद्धि नहीं होती, बल्कि खंडन ही होता है। भिन्न-भिन्न इतिहासकारो ने इस विषय के अन्तर्गत जो कुछ भी लिखा है, उसको विद्वान लोग प्रामाणिक मानकर उदाहरण देते हैं। उनके बयान एक दूसरे से भिन्न होने के कारण उन गवाहियों की हैसियत रखते है जिनको मैजिस्ट्रेट परस्पर विरोधी तथा मुकदमे के सबूतों में न रखकर रद्द कर देता है। यहाँ पर संक्षेप में उनका वर्णन करना उचित लगता है।

१. पहली शहादत-भाई बाले वाली जन्म सारवी :-

पहला प्रमाण है भाई बाले वाली जन्म सारवी- यह सबसे बड़ी सारवी टाइप में छपी हुई पुस्तक है और यही गुरु नानकदेव जी के मौलिक इतिहास के रुप में स्वीकृत है। इसके पृष्ठ संख्या ३२७ से ३२९ तक इस कथा का वृतान्त इस प्रकार लिखा हुआ मिलता है। शुभारम्भ इस प्रकार किया गया है कि "पटना के राजा का पुत्र शत्रुओं का भगाया हुआ जिस समय कुरुक्षेत्र आया तो मार्ग में से शिकार खेल कर एक हिरन को मार लाया। वह हिरन गुरू जी के सम्मुख भेंट कर दिया। इसके आगे लिखा हुआ है कि गुरु जी की आज्ञानुसार भाई बाले ने उसे देग में पकने के लिए रख दिया। सन्यासियों के पूछने पर गुरूजी ने उत्तर में कहा, 'माँस रखा है।' तो सन्यासियों ने कहा, 'भाई, यहाँ तो सूर्य ग्रहण लगा हुआ है। तू माँस पका कर खाता है, तो श्री गुरू नानकदेव जी ने उत्तर दिया- 'ज्ञान की बात करो।' तो एक सन्यासी दूसरों को पीछे हटा कर बोला, 'संतजी! ज्ञान की बात करो जी।' गुरु नानकदेव जी ने प्रत्युत्तर में एक सबद का उच्चारण किया। वह सबद श्री आदि ग्रंथ साहिब में मल्हार की वार के रुप में अंकित है-'पहिला मासहु निंमिआं।' आदि सबद सुनकर सबको सन्तोष हुआ। ग्रहण हटने के बाद उस देग में से राजकुमार द्वारा सबको खीर खिलाई गई, (ऐसा भी लिखा हुआ पाया जाता है)।

२. दूसरा प्रमाण :-

दूसरी गवाही गुरु बिलास पातशाही छठी से सम्बन्धित है। इसके अध्याय ९ छंद १६१ से यह कथा आरम्भ होती है। इसमें लिखा है कि भाई जेठे जी के पूछने पर श्री गुरु हरिगोबिन्द जी ने कुरूक्षेत्र का प्रसंग

बताते हुए कहा है कि- गुरु जी ने भाई बाले को आज्ञा देकर माँस मंगवाया-

"मच्छी माँस लिआवे जाइ। बाला आगया मान सिधाए।"

फिर गुरु आज्ञानुसार माँस पकाने के लिए रख दिया। पता लगने पर पंडित नानू अपने साथियों कें संग पहुंचकर विरोध करने लगा तो उनकी शंका के समाधान तथा मन की तसल्ली करने के लिए, मान के उनके मान को खंडित करने के लिए गुरु जी ने मल्हार के रुप में श्लोकों का उच्चारण किया जिससे सबके मन की तसल्ली करवा दी-

"तांके मान निवारन हेता। भाखे बच गुर क्रिपा निकेता।"

तत्पश्चात् गुरू जी के कहने पर हांडी जोड़ दी गई तथा उसमें से कुछ भी नहीं निकला। इसे देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गये।

"बाले कुंनी भूमि गिराई। कछ न मास दिख बिसमें पाई।"

(छंद १८३)

३. **तीसरा प्रमाण**- श्रीमान कवि भाई संतोख सिंह जी का कथन है-

'सिरी नानक मन ठानी ऐसे। इनसों चर्चा करीऐ कैसे।
पंडित बड़े रिदे जिन गरबा। मानी सनिआसी जो सरबा।

तत्पश्चात् लिखा है- राजकुमार ने मृग मार कर भेंट किया। उसी द्वारा ही गुरू जी ने मृग का माँस पकने के लिए रखवाया। नानू जैसे पंडितों ने पूछा कि ग्रहण (परब) काल में माँस क्यों पकाने के लिए रखा है। गुरूजी ने बताया कि उन्होंने तो गायों का दूध मँगवा कर खीर पकाने के लिए चढ़ाई है।

'तब बोले प्रभ गुणी गहीरा। हम तो धरिओ देग महि खीरा।
बहुत धेन चुआइ मँगाई। रीधहि पा को इह थाई।'

गुरुजी ने मल्हार राग वाले सबद उच्चारण करके सबको निरुत्तर कर दिया। भाई संतोख सिंह जी ने भी माँस वाले बर्तन में से खीर प्राप्त करके सबको छकाई यह बात भी ग्रंथ में प्रकट की गई है।

(नाटक प्रकाश उत्तरार्द्ध खंड अध्याय-१)

४. **चौथा प्रमाण :-** इस विषय में निर्मल पंथ भूषण श्रीमान ज्ञानी ज्ञान

सिंह जी द्वारा रचित प्रमाण है। आपने अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'तवारीख गुरु खालसा' भाग १ नम्बर के पृष्ठ १४४-१४८ तक समस्त कथा जन्म साखी के अनुसार ही वर्णन की है। परन्तु मृग भेट करने वाला राजकुमार पटना शहर के स्थान पर हाँसी के राजा अमृत राय का सुपुत्र जगत राय लिखा है।
५. इस विषय से सम्बन्धित पाँचवी शहादत उन ज्ञानी दित्त सिंह जी की है जो सिंह-सभा लहर के सुप्रसिद्ध प्रर्वतकों में से एक थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'श्री गुरू नानक प्रबोध' के पृष्ठ ११० पर लिखा है कि जिस समय गुरु जी ने यह देखा कि इस तीर्थ पर सभी ओर से लोग आ रहे हैं तो उन्होंने बड़े ही चमत्कारी ढंग से सबके लिए भोजन पकाने की व्यवस्था की-

'तिसी काल गुर जू यह कीना। बक्करा मार मास तिस लीना।
चाड़ देगची आग जलाई। बैठे आप पकावत आई।
जब लोकन यह हाल निहारो। हाहाकार कहि ऊच पुकारों।
चारो ओर घेर कर ठाढे। महा अगन मनमहि रिस बाढे।
तिन महि पांडा एक पुराना। आयो महा भरा अभिमाना।
याहि समें पुरबी के माही। सूरज ग्रहंण भयो है यांही।
मास महा नीचन को खाना। तुमने चहा सु यहा पकानां।
जब पाडे इस भांत पुकारा। तब गुर नानक शबद उचारा।
"पहिलां मासहुं निमिया__________।''

इस मुकद्दमे के पाँचों प्रमाणों में काफी मतभेद दिखाई दे रहा है। भाई बाला जी का मत है कि पटना के राजकुमार ने मृग मार कर गुरु जी को भेंट किया और गुरु जी के कथनाअनुसार बाले ने पकाया। गुरु बिलास कर्त्ता भाई जगत सिंह, भाई मनी सिंह जी शहीद कौ शिष्य रशीद, गुरु हरिगोबिन्द जी की जुबानी कहलाता है कि गुरू जी ने भाई बाले को भेजकर माँस मंगवाया तथा भाई बाले ने पकाया। संतोख सिंह जी का कथन है कि एक राजकुमार मृग मारकर लाया, परन्तु ज्ञानी ज्ञानसिंह जी कहते हैं कि वह तो हाँसी वाला राजकुमार जगत राय था। सिंह सभा के मुख्य नेता ज्ञानी दित्त सिंह जी का कथन है कि यह सभी गलत कह रहे है कि मृग या मछली का माँस पकाया गया था। गुरू जी ने तो स्वयं बकरा लाकर मारा था तथा अपने ही पवित्र कर-कमलों द्वारा उसका माँस

तैयार किया था। जन्म साखी के कर्ता का कथन है- ना भाई हमने तो खीर बनाई है। जन्म साखी तथा नानक प्रकाश में अन्त में खीर बनी तथा खिलाई लिखी है। परन्तु गुरु बिलास के कर्ता जी छठी पातशाही के जुबानी कहलवाते हैं कि जब हाँडी तोड़ी गई तो उसमें से कुछ भी नहीं निकला। इस प्रकार के बयान देकर इन इतिहासकारों ने गुरु नानकदेव जी को तमाशे करने वाला एक मदारी सिद्ध करने का पूरा प्रयास क़िया है। हाँ! इस बात से सभी सज्जन सहमत हैं कि गुरुजी ने यह सबद विद्याअभिमानी पंडितों का गर्व, घमण्ड चूर करने के लिए उच्चारण किए थे। दूसरा, इस बात में भी इन पांचों इतिहासकारों का एक मत है कि इस नाटक के अन्तिम दृश्य में किसी ने लिखा नहीं है कि गुरु जी ने इन श्लोकों द्वारा माँस का खाना सिद्ध करके सब को निर्देश दिया कि भाई साहब! निसंकोच माँस खाया करो क्योंकि इसमें कोई पाप नहीं है।

एक और विचार

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन सबदों में आरम्भ से अन्त तक माँस का ही वर्णन है, परन्तु इनमें वक्ता का दृष्टिकोण समझने की आवश्यकता है। गुरूजी ने माता, पिता, बहिन, भाई, स्त्री, पुरुष तथा मानव शरीर के सभी अंगों को माँस करके वर्णन किया है। मुँह, जीभ, हड्डी, चमड़ी तथा स्तन आदि सब सामग्री माँस ही है जिसको प्राकृतिक रूप में सभी लोग किसी-न-किसी रूप में प्रयोग कर रहे हैं। परन्तु माँसाहारी मनुष्य के झटके या हलाल के तरीके से ऐसे माँस का प्रयोग असभ्य से असभ्य मानव भी नहीं कर सकता। मातृ दूध से मानवीय संतान आज तक पल रही है और भविष्य में भी पलेगी। परन्तु यदि माँसाहारियों के तरीके से उनका झटका या हलाल करने की चेष्टा की जाए तो इस सृष्टि का सिलसिला कब तक चल सकेगा? स्त्री पुरुष गृहस्थ मार्ग मर्यादा के अनुसार परस्पर निर्वाह करते हैं। परन्तु यदि वे कुल्हाड़ियाँ लेकर महाप्रसाद बनाने हेतु एक दूसरे को काटने लग जाएँ, एक दूसरे को मारने लग जाएँ, तो यह सब कुछ कितने दिन तक चलेगा? इसलिए गुरु जी कहते हैं-

'मासु मासु करि मुरख झगड़े गिआनु धिआनु नहीं जाणै।

कउण मासु कउण सागु कहावै किसु महि पाप समाणै।'

(पृष्ठ १२८९)

मूर्ख लोग माँस-माँस कह कर झगड़ा करते हैं। पर माँस है क्या तथा शाक क्या है? पाप माँस खाने से है या शाक खाने से? इसका मर्म नहीं जानते। यह प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि गुरु जी मां, बाप, औरत, पुत्र, बहिन, भाई, राजा, प्रजा सब को ही माँस रूप कह रहे हैं तथा माँस भी सबका एक ही जैसा है। बनावट में भी कोई भेद नहीं है परन्तु उनके व्यवहार तथा प्रयोग में अन्तर है। एक औरत को पति अपनी पत्नी समझकर व्यवहार करता है, पुत्र अपनी माता समझ कर, भाई अपनी बहिन समझकर, ससुर अपनी बहू समझकर, भतीजा अपनी चाची-ताई समझकर आदर मान करते हैं। अब देखा जाए तो माँस तो एक जैसा ही है, परन्तु उसके साथ किए गए व्यवहार में अन्तर क्यों पड़ गया?

'मासु मासु करि मूरख झगड़े गिआनु धिआनु नहीं जाणै,
कउण मासु कउण साग कहावै किस महि पाप समाणे।'

माँस खाने की समस्या का समाधान यही पर होगा। गुरु जी ने माँसाहार एवम् शाकाहार के बारे में कहा है कि माता, पुत्र, बहिन, भाई एंवम् पुत्री आदि हैं तो सभी माँस के बने हुए परन्तु इनमें से माँस कौन सा है और साग कौन सा? माँस का भाव यहां पर अयोग्य तथा शाक का भाव योग्य समझा जाना चाहिए। जैसे अपनी पत्नी से व्यवहार करना सास तथा माता, बहिन, पुत्री या किसी और औरत की तरफ बुरी नजर से देखना माँस खाने के बराबर अर्थात् पाप है। इस विचारानुसार इन दोहों में माँस खाना ध्येय नहीं है बल्कि माँस का संसार में अपने-अपने अधिकार के अनुसार प्रयोग करना प्रयोजन है। तब तो इतिहास तथा गुरुबाणी के अनुसार इन (दोहों) में माँस खाने की सिद्धि नहीं होती। पाठकजन पिछले पन्नों में पढ़ चुके हैं कि श्री गुरू नानकदेव जी ने देवदूत के गृह में तब तक भोजन करना स्वीकार नहीं किया, जब तक उसने उनके साथ माँस न खाने का प्रण नहीं किया।

डाक्टर तथा विद्वानों के निर्णय

१. डा० चूनी लाल बोस आई. एस. ओ., एम. बी., एफ. सी. ने (जो अंग्रेजों के समय बंगाल सरकार के स्थापित कैमीकल इग्जामिनर थे), ने अपनी पत्रिका 'हैलथ एंड हैपीनैस'' अक्तूबर १९२० में लिखा था कि-

"हिन्दुस्तान की आबादी के बहुत सारे लोग मछली तथा माँस को छूते तक भी नहीं। उनकी खुराक में सबसे बढ़िया प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थ दूध या दही से बने हुए होते है।"

२. डा. राबर्ट ए. एम. ई., बी. एस. सी. सी., लन्दन, अपनी पुस्तक फर्सट स्टेज हाइजीन के पृष्ठ ९६ पर लिखते हैं -

'प्रोटीन का सबसे बड़ा भंडार, दालें, मटर, लोबियां तथा मसूर हैं। ये दूसरी सब्जियों से विशेषता रखती हैं क्योंकि इनमें और सब्जियों से सबसे अधिक मात्रा में प्रोटीन होती है। हमारे सभी खाद्य पदार्थों में बिना पनीर के यह सबसे अधिक प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थ हैं।

३. डा० टॉमसन डिटन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रैशनल आफ वैजीटेरीअनिजम के पृष्ठ ७-८ पर लिखते हैं-

'फलों में ८०% से अधिक पानी होता है। ८ से १२ प्रतिशत चीनी एंवम् १ से ४ प्रतिशत नमक होता है। फलों में पाया जाने वाला पानी अति उत्तम तथा रक्त शोधक होता है। सर्वाधिक साफ शक्कर जो खून में शीघ्रतिशीघ्र घुल जाती है तथा डिब्बों में बन्द करके सम्भाला हुआ बहूमूल्य नमकीन मादा भी होता है। पूर्णतया पके हुए फल ताजे या धूप में सुखाए हुए पदार्थ अधिक शक्तिवर्धक होते हैं। पाचन नली में जो पाचन क्रिया का कार्य होता है उसे फल स्थाई बनाए रखते हैं। खून को क्षार पहुंचा कर ठंडा तथा शुद्ध करते हैं। शरीर के अन्दर टूटे फूटे खराब रेशों की मुरम्मत करते हैं। शरीर के प्रत्येक भाग में स्फूर्ति तथा शक्ति उत्पन्न करते हैं।"

४. डाक्टर बैल अपनी पुस्तक नैचरुल एण्ड ह्यूमन डाइट (कुदरती एंवम् मानवीय आहार) के पृष्ठ १७ पर लिखते हैं :-

'मैंने बहुत सारे लोगों के ख़ून के चित्र लिए, उनमें से उनका रक्त अच्छा निकला जो माँस नहीं खाते थे।'

इसी पुस्तक के पृष्ठ २९ पर मिस्टर सिडनी लिखते हैं-

'शाकाहारी मनुष्य माँसाहारी मनुष्य से १० वर्ष से अधिक जीवित रहता है। माँसाहारी से बीमार भी कम होता है।'

५. डा० ऐडम ऐडनबर्ग जो विश्वभर में इतिहासज्ञ करके प्रसिद्ध है 'कुदरती एंवम् मानवीय खुराक' नामक पुस्तक में पृष्ठ २९ पर लिखते हैं कि-

मुझे ६० वर्ष की आयु में अधरंग जैसी नामुराद बीमारी ने घेर लिया। वह माँसाहारी खुराक को छोड़कर शुद्ध वनस्पति खुराक के प्रयोग करने से समाप्त हुई। अब मैं ६३ वर्ष का हो गया हूँ, परन्तु अभी तक मुझे कोई रोग नहीं लगा।'

६. इसी पुस्तक में पृष्ठ २८ पर डाक्टर हैरस लिखते हैं :-

मुझे सात वर्ष माँसाहार को त्यागे हो चुके हैं। यहाँ तक कि मैं अंडे, दूध एवम् पनीर का प्रयोग भी नहीं करता परन्तु मेरा स्वास्थ्य पूर्णतः उत्तम है। अब मैं, अपनी ७९ वर्ष की आयु में प्रतिदिन ४० से ५० मील तक साईकल पर सफर कर सकता हूँ।

७. प्रोफेसर विलियम लौरेंस एफ. आर. सी. उपरलिखित पुस्तक के पृष्ठ ४ पर लिखते हैं-

'मनुष्य के दाँतों तथा माँसाहारी जानवरों के दाँतों की बनावट में काफी अन्तर होता है। जानवरों के दाँत इस प्रकार के बने हुए होते हैं जिनकी मदद से वह माँस चबा सके तथा पाचन संस्थान पचा सकें। मनुष्य के दाँत किसी प्रकार भी इन माँसखोर जानवरों के साथ नहीं मिलते।

८. इसी पुस्तक के पृष्ठ ४० पर लिखा हुआ है कि डाक्टर जोशी, ओल्ड फील्ड सीनीयर डाक्टर, लेडी माग्रेट अस्पताल ब्रहाले, (इंगलैंड) समाचार पत्र 'हैरल्ड आफ दी गोल्डन एज़' जनवरी १९०५ में लिखा है कि मनुष्य के हृदय के एक छोर में फलों, फूलों तथा प्राकृतिक खाद्य पदार्थ खाने की इच्छा समाई होती है। वह फलों की ओर इस प्रकार आकर्षित होता हैं जिस प्रकार जानवर माँस के टुकड़े की ओर लपकता है। प्रथम अवस्था में मनुष्य ने वही कुछ खाया, जो उसे प्राप्त हुआ। द्वितीय अवस्था में उसने वह खाया जो उसे पसन्द आया। परन्तु तृतीय अवस्था में उसे वह खाना चाहिए जो उसे लाभदायक लगे। यदि मनुष्य माँसाहार का त्याग

कर शाकाहार को अपना ले तो बहुत-सी बीमारियों से वह बच सकता है। मनुष्य पहले से अधिक शक्तिशाली तथा प्रसन्नचित दिखाई देगा।

९. प्रोफेसर चिटन डैन पी. एच. डी., एस. सी., डी. एन. एल. डी. आफ युनाइटड स्टोरज़ डिपार्टमैंट आफ एग्रीकलचर ने इसी पुस्तक के पृष्ठ ५१ पर अपने अनुभव के आधार पर लिखा है-

'अमरीका के सिपाही की खुराक पहले ७५ औंस होती थी। जिसमें २२ औंस माँस होता था। इस राशन को कम करके ७५ से ५१ औंस कर दिया गया। इसमें माँस २२ औंस के स्थान पर १ औंस रहने दिया गया। नौ मास के तजुर्बे के बाद यह सिद्ध हुआ कि वह पहले से पच्चास प्रतिशत अधिक स्वस्थ हो गये हैं। फौजी काम भी पहले से अधिक शीघ्रता से करने लगे हैं। फौजी भावनाऐं भी उनमें अधिक थी। इसलिए उनको यह स्वतन्त्रता दी गई कि वह अपनी इच्छानुसार जो खुराक चाहे खा सकते हैं। परिणामस्वरुप माँसाहार किसी ने भी स्वीकार नहीं किया।

१०. फ्रांस की राजधानी पैरिस में १९१८ ई० में एक 'इंटर एलाइड कानफ्रैंस' इस मुद्दे पर विचार-विमर्श करने के लिए हुई थी कि लोगों की खुराक क्या होनी चाहिए। इस विषय के लिए निम्नलिखित अनुभवी तथा विश्वप्रसिद्ध विद्वानों का एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन स्थापित किया गया था-

१. प्रौफेसर गले (फ्रांस)
२. प्रौफेसर लैगलोइक (फ्रांस)
३. बोलज़ी (इटली)
४. पगलियानी (इटली)
५. हुलिट (बैल्जियम)
६. चिटर्डन (यू. एस. ए.)
७. लसक (यू. एस. ए.)
८. ई. एच. स्टारलिंग (अमरीका)
९. टी. बी. वुड (अमरीका)

पाँच प्रसिद्ध देशों के उपरलिखित महान विद्वानों ने २९ अप्रैल १९४१ ई० को रोम में हुई सभा में निम्नलिखित रैजूलयूशन पारित किया-

बहुत ही खोज तथा विचार करने पर कमीशन इस परिणाम पर

पहुँचा है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य के लिए माँसाहार किसी प्रकार भी उचित तथा लाभदायक नहीं है।

(नैचुरल एण्ड ह्यूमन डाइट, पृ० ६९)

११.* डा. किंगस्फोड डेवी, लाईस, काब और सी. ए. ओबन आदि वैज्ञानिकों का मत है कि मनुष्य के आन्तरिक तथा बाह्य अंग इस बात की पुष्टि करते हैं कि मनुष्य का स्वाभाविक आहार वनस्पति है।

१२. नासूर (भंगदर) रोग के प्रसिद्ध विशेषज्ञ, डा० बैल, एम. डी. आर. एफ. पी. सी. ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (The Cancer Scourage and How to Destroy it) "नासूर का फोड़ा तथा उसे कैसे मृतप्राय किया जाए?" में लिखा है कि-

"विश्व की आबादी में २ करोड़ ५० लाख, केवल इंगलैंड तथा वैल्ज में ३० हजार मनुष्य प्रति वर्ष इस दुष्ट रोग से मृत्यु का ग्रास बनते हैं। इस रोग का कारण माँसाहार बताकर इसे छोड़ने की सिफारिश की गई है।"

१३. डा० बैल वर्तमान समय में नासूर रोग के बहुत बड़े चिकित्सक माने गये हैं। उन्होंने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में शाकाहार से बचाए अनेकों रोगियों के रक्त की तस्वीरें दिखा कर सिद्ध किया है कि शाकाहार ही इस रोग का मूल इलाज है।

१४. डा. जोशिया ओल्ड फील्ड एम. ए. अपनी पुस्तक (The Cruelties of The Flesh Traffic) (भावार्थ माँस के व्यापारियों की निर्दयता) के पृष्ठ २८-२९ पर दिल को कँपा देने वाला लेख लिखते हैं :-

'याद रखो, प्रत्येक जानवर एक जीवित वजूद लिए हुए है जो जीवन की खुशियों तथा मरने के कष्ट को अच्छी प्रकार समझता, जानता तथा महसूस करता है। इस शताब्दी के पहले वर्ष ही अनुमान लगाया गया कि केवल इंगलैंड में दस लाख से अधिक पशु मारे गये। ७० लाख भेड़ो के गले पर छुरी चलाई गई। २० लाख सूअरों ने अपनी दुखपूर्ण आहें आकाश की ओर भेजी जिसका भाव यह है कि कोई भी ऐसा दिन नहीं गुजरता जिस दिन स्वादहेतु २८०० पशु, २० हजार भेड़े

---

* विश्व धर्म कोश दूसरा संस्करण, पृष्ठ २२३-२३२.

तथा ५ हजार से अधिक सूअर नहीं मारे जाते। सूअर के बच्चों को ऊपर से नीचे चक्कर काटते पहिए के संग जंजीर से जकड़कर उबलते हुए पानी के टबों में फेंक दिया जाता है। वह असहाय, बेचारे पशु वहाँ बुरी तरह चीखते चिल्लाते तड़पते हैं। उबलते हुए पानी के असहनीय कष्टों को भोगते हुए वह अपनी जान दे देते हैं।

१५. मिस्टर सिडनी एच. बैरड अपनी पुस्तक (नैचरल एण्ड ह्यूमन डाइट के पृष्ठ २ पर लंदन की एक कम्पनी की ओर से प्रतिदिन होने वाले पशुओं के विनाश का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

'विचार करो, १० हजार पशुओं का समूह दो दो की पंक्तियों में १५ मील लम्बी पंक्ति में चला जा रहा है। उसके पीछे २० हजार भेड़े मैं मैं चिल्लाती हुई १२ मील लम्बी सड़क को रोके चल रही हैं। इनके पीछे २७ हजार शक्तिशाली सूअरों ने रोकी हुई है। इन सबके पीछे ३० हजार मूर्गो ने छः मील लम्बी सड़क पर अपना एकछत्र राज्य स्थापित किया हुआ है। इन सब जीवों को अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने में कम से कम दो दिन लगेंगे। यह ८७ हजार पशु लन्दन के एक ही ज़िब्हाखाने (Swift and Co.) में एक ही दिन में मृत्यु के घाट उतार दिए जायेंगे।

यहाँ ही नहीं, आर्सर, लिप्टन एंवम् और जिब्हाखानों में भी प्रतिदिन असंख्य जानवर मारे जाते हैं। उस पृथ्वी पर जिसे क्रिश्चियन लैंड भाव ईसाइयों की धरती कहा जाता है। केवल लन्दन में ही चार सौ तथा बृस्टल जैसे नगरों में एक सौ बीस ज़िब्हाखाने हैं। जिब्हाखानों में यह अवांछित प्रबन्ध कितना बुरा है। जिसमें कम से कम तीन सौ करोड़ पशु प्रत्येक वर्ष बड़ी निर्दयता से मारे जाते हैं। छोटे छोटे जानवर तथा पक्षी इनसे अलग हैं। ईसाइयों को याद रखना चाहिए कि उनके पैगम्बर यसू मसीह का कथन है-'आई डिज़ायर मर्सी नाट सैक्रीफाइस (I Desire Mercy Not Sacrifice) मैं कुर्बानी नहीं चाहता, दया चाहता हूँ।"

१६. यही मिस्टर सिडनी एच बोई अपनी किताब 'इज़ फलैश ईटींग मौरेली डिफैंसिबल!' के पृष्ठ १६-१७ पर उन कष्टों तथा दुखों का वर्णन करते है जो पशुओं को कत्ल करने से पहले एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने के लिए दिए जाते हैं-रेल या सड़क द्वारा पशुओं को एक

स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने के लिए बहुत सारे पशुओं को ठूँस-ठूँस कर भरना, गर्मी-सर्दी के कष्ट, चोटे, कइयों के अंगों का टूट जाना, डर, थकावट तथा उनको ले जाने वालों का वहिशियाना बर्ताव। अमरीका की रेलवे कम्पनियों के आंकड़े बताते हैं कि हज़ारों जानवर गाड़ी में ही मर जाते हैं। लाखों ही अंगहीन लंगड़े-लूले तथा जख्मी हो जाते हैं। जिन सूअरों की पीठ तथा अंग टूट जाते हैं उनको खीचकर ज़िब्हाखाने में ले जाया जाता है। गर्मी के मौसम में मारे जाने वाले जानवरों को तीन दिन तथा तीन रातें भूखे-प्यासे रखा जाता है।

मैं यह बताना चाहता हूं कि प्रतिवर्ष ३३ लाख जीवित जानवरों को इस प्रकार कष्ट दिये जाते हैं। केवल एक ईसाई देश इंगलैंड के माँसाहारियों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रतिदिन १० हजार जानवर उसकी बन्दरगाहों पर जहाजों द्वारा पहुँचाए जाते हैं।

अंग्रेजी नस्ल के रहमदिल दार्शनिक एवम् वैज्ञानिक इन्सानों के इन लिखित दस्तावेज़ों से प्रकट होता है कि केवल जिह्वा के स्वादहेतु जानवरों को मारने के समय ही अत्याचार नहीं किया जाता बल्कि उससे पहले भी सख्त निर्दयता का व्यवहार किया जाता है। यदि माँसाहारी लोग इन अनगिनत जानवरों के अनन्त प्रकार के कष्टों तथा दुःखों पर दृष्टिपात करें तथा सोचें कि उनको केवल उनकी ज़ीभ के चसके का शिकार होना पड़ता है, तो वह कभी भी माँस न खाने की ठान लें। केवल एहसास की ही आवश्यकता है।

अंडों का प्रश्न

एक बार एक व्यक्ति ने लेखक से प्रश्न पूछा था कि क्या अंडे शाकाहारी सब्ज़ी में नहीं आते? इसके प्रत्युत्तर में लेखक ने कहा कि ऐसा समझना गलतफहमी ही है। क्योंकि अंडा एक जानवर का गर्भ है, जिसमें नर तथा मादा जोड़े के मिलन से उत्पन्न होने वाले सजीव प्रमाणु विद्यमान है। इसलिए अंडे को नष्ट करना ऐसा ही एक दोष है जैसा की मानस नस्ल में स्त्री का गर्भ नष्ट करना। गर्भपात केवल चारित्रिक ही नहीं कानूनी तौर पर भी जुर्म है। अंडे को तोड़ कर पूड़े बनाकर या उबाल कर खाना एक बहुत ही भारी दुष्चारित्रिक तथा शर्मनाक कार्य है।

५

सूत्र पड़ना या मस्ती

नामधारी सिद्धान्त के अन्तर्गत कीर्तन करते हुए दीवानों में मस्ताने सिक्खों के मस्त हो जाने को 'सूत्र पड़ना' कहते हैं। वास्तव में नामधारियों का सूत्र तथा सूफी सन्तों का वजूद में आना एक ही बात कही जा सकती है। मस्त आदमी बिना किसी फ़रेब, छल-कपट के सीधा-साधा इन्सान होता है। सीधेपन के लिए 'सूत्र' शब्द बहुत ही सार्थक है। 'सूत्र' शब्द पँजाबी भाषा में धागे का परिचायक है। मिस्त्री लोग किसी लकड़ी को सीधा करके कार आमद करके, उसमें जिस धागे से निशान लगाते हैं उसका नाम भी सूत्र है। जिस प्रकार सूत्र (सूत) लकड़ी का टेढ़ांपन निकाल कर उसे सीधा कर देता है, उसी प्रकार जिस आदमी को सूत्र पड़ जाता है उसमें से छल-कपट का टेढ़ापन निकल जाता है और वह आत्मपद (परमंपद) प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। जिस प्रकार सूत्र (सूत) का धागा फटे पुराने कपड़े सीता है। उसी प्रकार परमार्थ में सूत्र भगवान से टूटे हुओं को जोड़ता है, तथा जिज्ञासु जीवों को परमेश्वर के चरणों से जोड़ने में सहायक सिद्ध होता है।

'सूत्र' प्रेम का विकास है। प्रेम को नारद जैसे मुनियों ने - 'अनिवर्चनीय' या अवर्णनीय कहा है। आपने अपनी भक्ति के सूत्रों के इक्यानवें (५१) सूत्र में लिखा है- 'अनिरवचनीय प्रेम सुरूप।' भाव प्रेम का स्वरूप वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रेम तथा भगवान में कोई अन्तर नहीं है। वह एक ही हैं। जिस प्रकार बाणी द्वारा ब्रह्म का वर्णन करना असम्भव है तथा उसके बारे में वेद नेति-नेति कह कर चुप हो गये हैं, उसी प्रकार प्रेम का वर्णन भी बाणी द्वारा असम्भव प्रतीत होता है। विश्व में यह बात प्राय: देखी जाती है कि किसी मनभावन बात श्रवण करने

से, किसी स्नेही के साथ मिलान होने से, वार्तालाप करने से एवम् स्पर्श करने से हृदय में जिस आन्नद का संचार तथा अनुभव होता है, उसका वर्णन यह जिह्वा नहीं कर सकती। वह तो गूंगे का गुड़ है-

'कहि कबीर गूंगे गुड़ खाइआ पूछे ते क्या कहीऐ।'

मौलाना रूम अपनी मसनवी में लिखते हैं "मैं प्रेम या इश्क का हाल एवम् व्याख्या वर्णन करने में शर्म महसूस करता हूं।" दिल के भेदों को जुबान से खोल सकते हैं परन्तु राज-ए-इश्क जुबान द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। कलम वैसे लिखने में शीघ्रता करती है। परन्तु इश्क का ब्यान करते समय अपने आप फट पड़ती है-

१. "हर कि गोयम इशक रा शरहों बयां।
चूँ ब इशक आयम खिजल बाशम अज़ां।"

२. "गरचि तफसीरे ज़बां रोशन गर असत।
लेक इशके ज़बां रोशन तर अस्त।"

३. चूँ कलम अंदर नविशतन में शिताफत।
चूँ ब इश्क आमद दलम बर खुदशिगाफत।

जब मौलाना साहिब का भक्ति और प्रेम का वर्णन इस स्थिति तक पहुँच गया तो आपको वजद या सूत्र हो गया। तन का होश न रह गया। कलम तोड़ दी तथा कागज़ फाड़ दिया।

४. चूँ सुखन दर वसफ ई हालित रसीद।
हम कलम शिशकसतों हम कागज़ दरीद।

जब होश आया तो कहने लगे :-

५. अकल दर शरहश चू खर दर गिल बखुफत।
शरहे इशको आशकी हम इशक गुफ़त।

अर्थात् प्रेम की व्याख्या करने में अक्ल इतनी आज़ज है कि जिस प्रकार कीचड़ में फँसा हुआ गधा उसमें से निकलने के लिए हाथ-पाँव तो मारता है परन्तु कीचड़ उसको छोड़ता नहीं। उसी प्रकार अक्ल प्रेम की क्या व्याख्या कर सकती है? वह तो कीचड़ में फँसे हुए गधे के सामान है। मौलाना रूम के कथनानुसार प्रेम के मामले में बुद्धि की पहुंच हो ही नहीं सकती। क्योंकि बुद्धि प्रेम के विकसित रूप या सूत्र

अर्थात् मस्ती का अनुभव करने में अशक्त है। इसके असली रस को तो वही अनुभव कर सकता है या आनन्द ले सकता है, जिसने इस रस को चखा है- "सौ जाणै जिनि चाखिया।" परन्तु महापुरुषों ने इस विषय की प्रत्यक्ष परिस्थितियों के बारे में कुछ-न-कुछ अवश्य कहा है। 'कुछ नहीं कहा जा सकता', 'कुछ नहीं लिखा जा सकता' कहकर भी इतना कुछ कह दिया है कि उस सबको इक्ट्ठा करके कई ग्रंथ लिखे जा सकते हैं।

पुस्तकों का अध्ययन करने तथा देखने से भी इस बात का पता चलता है कि सूत्र केवल नामधारियों को ही नहीं पड़ता, बल्कि कम या अधिक रुप में प्रत्येक उस सम्प्रदाय में मौजूद है जो भक्ति प्रधान एवम् प्रेम-सत्ता का कायल है। प्रेम रस तो अलौकिक है। हम देखते हैं कि जो लोग झूठे विषय विकारों में लिप्त हैं उनको भी सूत्र होता है वे भी इन व्याख्यानों से प्रभावित होकर हँसने, खेलने, नाचने, कूदने, रोने, पीटने आदि की चेष्टाएं किया करते हैं। क्योंकि जब थोथे और तत्त्वविहीन रसों का प्रभाव मनुष्य तथा पशुओं, पक्षियों तक को दीवाना-मस्ताना कर देता हैं तो सच्चे एवम् कल्याणकारी रस के प्रभाव से जिज्ञासु कैसे बच सकते हैं? जिन महात्माओं को यह सार-रस प्राप्त हो जाए वह क्यों न मस्ती में झूमे?

नामधारी सिक्खों के बारे में कई बार लोगों को यह कहते सुना है कि नामधारी सिक्खों की और तो सब बातें अच्छी हैं पर कीर्तन में दीवानेपन में उनका नाचना, कूदना तथा सिर मारना आदि इनके पागलपन की ही नुमाइश है; परन्तु वे यह नहीं सोचते कि संसारी लोग काम चेष्टा में शर्म महसूस नहीं करते, क्रोध के प्रभाव में बँदर की भांति नाचते उन्हें लज्जा नहीं आती, लोभी होकर, लोभ के वशीभूत होकर 'नाचिओ घर-घर बार' की चेष्टा करने को वे बुरा नहीं समझते परन्तु भगवान-सर्वशक्तिमान परम पिता परमात्मा के रंग में रंगे हुए भक्तो की वजदवाली स्थितियों की देख देख कर मसखरी क्यों करते हैं? उन्हें प्रेमी भक्तजनों से मस्खरी करने, घृणा करने में संकोच क्यों नहीं होता?

मसनवी मौलाना रूम की एक तसवीर के अर्न्तगत इस विषय के सम्बन्ध में लिखा है कि-

'जो पुरुष सूफी लोगों के कीर्तन, वजद या हाल से इन्कार करता है वह मजबूर है; क्योंकि जो उसको स्वयं को प्राप्त नहीं उस पर ईमान करना और विश्वास करना बहुत ही कठिन है। जिस प्रकार हरियाली तथा बहता हुआ पानी ज्ञानरंधी को, आँखों वाले की आत्मा को सरूर तथा ताजगी प्रदान करता है (परन्तु अज्ञानी (नेत्रहीन) पुरुष ऐसे दृश्य देखने से कृपा-विहीन ही रह जाता है। इसी प्रकार गुप्त करतबों तथा उनसे प्राप्त आनन्द अज्ञानी व्यक्ति न समझ सकें तो आश्चर्य की बात नहीं। जो मनुष्य परमहँस की तरह स्थिति वाले प्रेमी भक्तजनों के सूत्र को अस्वीकार करते हैं वे बुद्धिमान होते हुए भी बच्चे के समान हैं।

हिन्दी साहित्य एंवम् सूत्र

हिन्दी एवम् संस्कृत साहित्य में मस्ती या सूत्र की पूर्णारूपेण पुष्टि होती हे। जिसके कुछ उदाहरण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हैं-

१. नारद मुनि जो ध्रुव एवम् प्रहलाद आदि भक्तों के गुरु हुए हैं, भक्ति निबन्ध में संस्कृत भाषा में ८४ सूत्र लिखे हैं। जिनमें लगभग भक्ति के सभी अंगों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। छठे सूत्र में मुनि जी लिखते हैं कि भक्ति ऐसी वस्तु है जिसके प्रभाव से मनुष्य उन्मत्त या मस्ताना हो जाता है; शान्त तथा आत्मसंतुष्ट हो जाता है।

"यज ज्ञातवामत्तो भवति, सतबधो भवति, आत्मरामौ भवति।"

इस सूत्र की व्याख्या में लिखा है कि-

'भगवान का प्रेम प्रकट होते ही मानव को पागल कर देता है। इसलिए प्रेमी-भक्त सदा ही प्रेम के नशे में चूर रहता हुआ प्रभु के ही गुण सुनाता रहता है। बाह्य बातों का उसे कोई होश नहीं रहता। जैसे, पागल जो चाहे बोलता है तथा करता है, इसी प्रकार उन्मत्त प्रेमी भी ईश्वर चर्चा में मस्त रहता है, क्योंकि उसके मन को यही सुहाता है।

(प्रेम दर्शन, पृष्ठ १०)

२. 'भागवत पुराण' के ग्यारहवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय के ३९-४० दोहों में इस सूत्र की इस प्रकार पुष्टि की गई है-

भवजन सुभद्राणि रथांग पाणेर जनमानि कमाणि चयानी लोके।
गीतानि, नामानि, तदर्थकानि गायन विलज्जो विचरेद संग।

एंवम् व्रत सुं प्रिय नाम कीर्तया जतानुरागे द्रतचित उच्चचे।
सत्तयधो, रोदति, रोति, गायतुनमाद वन नृतयाति लोग बाह्य।

अर्थात्, भक्त, चक्रधारी भगवान के कल्याणकारी तथा लोक प्रसिद्ध जन्मों तथा कर्मों को सुनता हुआ, उनके अनुसार रखे गए नामों को, लज्जा छोड़कर गाता हुआ स्वतन्त्रतापूर्वक विचरता है। इस प्रकार वह व्रतधारण करके अपने प्रियतम के नाम तथा कीर्तन से प्रेम हो जाने के कारण कोमलचिन्त हुआ पागलों की भाँति कभी ज़ोर-ज़ोर से हँसता है, कभी रोता है, कभी प्रसन्नचित्त होकर चिल्लाता है कभी ऊँचे सुर में गाने लग जाता है, कभी नाचने लग पड़ता है।

३. उद्धव जी ब्रज से मथुरा पहुँचकर राधिका जी को सूत्र का इस प्रकार वर्णन करते हैं-

'भ्रमति भवन गर्भे, निनमितं हर्सान्त, प्रथयति।
तू वार्ता चेतना चेतनेशू। लूठसि चवि राधा।
कंपतागि मुरारे, विशम़ विषय खेदो दुर्गा रिवि भ्रांत चित:

(भागवत पुराण स्कन्ध ११)

उद्धव जी भगवान के प्रति राधिका की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि महाराज! उसकी तो दशा ही विचित्र है। घर के आँगन में चक्कर काटती रहती है। बिना कारण खिलखिला कर हँसने लगती है। चेतन तथा अचेतन अवस्था में भी आपकी बात ही मुंह से निकलती है। कभी धूल में लोटने लग जाती है। कभी थर-थर कांपने लगती है। हे मुरारी! मैं क्या बताऊँ वह चन्द्रमुखी राधे आपके असहनीय विरह वेदना द्वारा विभ्रांत हुई विचित्र प्रकार की चेष्टाएं करती है।

४. श्री रामचन्द्रजी की प्रतीक्षा में सुतीक्ष्ण ऋषि व्याकुल है। जिस मार्ग से श्री रामचन्द्र जी को आना था वे उसी दशा में, उसी मार्ग पर नाचते हुए जा रहे हैं। 'रामचरितमानस' में उनकी मस्ती में ध्यान का वर्णन इस प्रकार किया है-

'दिस अर बिदिस पंथ नहीं सूझा, को मैं चलिओ कहां नहीं बूझा।
कबहुं कि फिर पाछै हट गई, कबहुं कि नृत कर सुन साईद।
अबिरले प्रेम भगति मुनि पाई, प्रभु देखहि तर ओट लुकाई।''

५. गोपियाँ भगवान से कहती हैं -

'चित सुखेन, भव ताव हहतं, गंहेष।
यन निर विषतबुत करावखि गृहये कत्ये।
पादा पंद न चलतस भव पाद मुलाद,
या मः कंधम् व्रज मथो करवाम् किंबा।

(श्रीमद् भागवत पुराण, पृष्ठ १०-२९-३४)

अर्थात् हे प्रियतम! हमारा चित आनन्दपूर्वक गृहकार्यों में तल्लीन था, जो आपने चुरा लिया है। हमारे हाथ भी घर के कामों में लगे हुए थे, वह भी अब निकम्मे हो गये हैं। अब वह आपके चरण-कमलों से एक कदम भी पीछे नहीं हटना चाहते । अब हम घर कैसे जायें? और घर जा कर करें भी क्या? जब चित्त पर से संसार का नक्शा ही मिटा दिया गया हो तो किसी भी लौकिक या वैदिक कार्य में चित्त कैसे लगे? वह कार्य स्वाभाविक ही उससे छुट जाते है।

६. भक्त सूरदास जी प्रेमा भक्ति के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहते हैं-

'न लाज तीन लोक की न वेद के कहियो करै।
न संक भूत प्रेत की न देव जच्छ ते डरै।
सुनै न कान और की द्रसै न और इच्छना।
करै न बात और की सु भक्त प्रेम लच्छना।'

७. भक्त सुन्दरदास जी ने प्रेमी भक्त की चेष्टाओं का जिक्र इस प्रकार किया है-

'कबहुँक हँस उठ नृत करै रोवन फिर लागै।
कबहुँक गदगद कँठ शब्द निकसै नहिं आगै।
कबहुँ हृदय उमंग, बहुत ऊँचे सुर गावै।
कबहुँक है मुख मौन गगन जैसो रहि जावै।
चित्त बित्त हरि में लागिओ सावधान कैसे रहै।
यह प्रेम लच्छना भक्ति है, शिष्य सुनो सुन्दर कहै।

इस्लाम में सूत्र

हिन्दी साहित्य में सूत्र की महानता विद्यमान है। भक्तिकाल के कवियों द्वारा वर्णित प्रेमी भक्तों की विशेषताएँ बताने के पश्चात् अब इस्लामी साहित्य में भी उसकी प्रामाणिकता बताई जाती है। मसनवी मौलाना रूम की एक शरा में सूत्र की पुष्टि इस प्रकार की गई है-

'इस्लाम में सूफी सन्तों का मत है कि सूफी का दिल राग सुनकर ऐसा शुद्ध हो जाता है जैसे चाँदी अग्नि में तप कर होती है। कव्वालियां-कीर्तन सुनने से दिल में ऐसी अग्नि प्रचंड हो जाती है कि उससे मन की अनेक बुराइयाँ जलकर राख हो जाती हैं। जो मस्ती कई लौकिक साधनों द्वारा भी प्राप्त नहीं हो सकती, वह सूफी की कव्वाली (कीर्तन) सुनने से प्राप्त हो जाती है। कई बार कीर्तन सुनने की दशा में सूफी सन्तों के अंगों की दशा जड़ जैसी हो जाती है तथा वह बेहोश होकर गिर जाते हैं। सभा में बैठे और लोग भी मस्ताने सूफी की बरकतों से खाली नहीं रहते । हाँ, असली तथा नकली सूत्र की पहचान या परख केवल उनको ही है, जो इससे आहला दर्जे के वाकिफकार हैं।

(शरा मस्नवी मौलाना रूम)

२. हज़रत मुहम्मद साहिब की शबै मैराज की मस्ती का राक मुशाहदा है। इस के सम्बन्ध में मौलाना रूमी का कथन है-

जिसमि खाक अजइश्क पर अफलाक शूद।
कोह दर रक्स आमदो चालाक शूद।

भाव रसूले अल्ला का ख़ाकी जिस्म इश्क के प्रभाव अधीन आकाश में गया तथा पर्वत तूर पर भगवान के जलवे की झलक मात्र से नाचने लगा।

३. हज़रत मुहम्मद साहिब क़ो इल्हाम के समय सूत्र के होने की सिद्धि इस्लामी अदब में से हुई। जिस समय आप पर वही नाज़ल होती थी तो आपका मुख झाग से भर जाता था तथा मुख में से इस प्रकार की आवाज़ निकलती थी कि सुनने वाले ही भयभीत हो जाते थे। ऐसी हालत में हज़रत साहिब कितनी ही देर तक बेहोश पड़े रहते थे।

४. ख्वाज़ा साहिब हज़रत मुअयुन्नुद्दीन चिश्ती अज़मेर वालों से सम्बन्धित

उनकी जीवनी में लिखा है कि आप एक बार ख्वाजा हजरत शेख अब्दुलकादर जालानी के चरणों में पहुँचे तो सरोद (कीर्तन) सुनने की इच्छा ज़ाहिर की। जीलानी साहब राग सुनना हराम समझते थे, इसलिए उन्होनें अपने शहर में से सभी कव्वालों (कीर्तन करने वालों) को निकाल दिया था। परिणामस्वरूप आपको कीर्तन करवाने का प्रबन्ध करना कठिन हो गया। हज़रत मुअयुन्नुद्दीन चिश्ती के दर्जे को वह अच्छी प्रकार जानते थे। इसलिए राग को हराम समझते हुए भी जीलानी साहिब ने कीर्तन का प्रबन्ध किया। एक बूढ़ा कव्वाल लाया गया तथा उसने कीर्तन आराम्भ कर दिया। कव्वाल ने जिस समय इस मखसूस अदा से यह मिसरा गाया- 'कुशतगानि खंजरे तसल्ली करा' ....तो ख्वाज़ा साहिब को बेहोशी का दौरा पड़ गया। उस दशा में आपका शरीर रुई के ढेले के समान हल्का हो गया। दर्शक यह देखकर आदर से झुक गए। उन्होंने देखा कि ख्वाज़ा साहिब उड़-उड़कर छत के साथ जा लगते हैं। तथा फिर ज़मीन पर गिर पड़ते हैं।

५. हज़रत मनसूर एवम् शमस तबरेज़ को कौन सज्जन नहीं जानता? मनसूर को सूली पर चढ़ाए जाने पर तथा शमस तबरेज की खाल उतारे जाने का अधारभूत सूत्र भी तो यही था। मनसूर का अन्हलहक्क, शमस तबरेज़ का 'कुम बिइजनी' कहना भी सूत्र का ही चमत्कार था। पहले ने मस्ती में आकर नारा लगाया - 'मैं खुदा हूँ' तो दूसरे ने 'कम बिइजनी' 'मेरे हुक्म से ज़िंदा हो जा' कहकर मृत हाथी को जीवित कर दिया था। मौलवी लोगों ने फतवे देकर उन दोनों को जान से मरवा दिया था।

सिक्ख साहित्य में सूत्र की सिद्धिः

पहले बताया जा चुका है कि नारद मुनि ने प्रेम को 'अवर्णननीय' अर्थात् जिसका बयान न किया जा सके, ऐसा कहा है। गुरुवाणी द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है। श्री गुरुरामदास जी नें सूही राग में 'प्रेम' को 'अकथ अर्थात् कथन से रहित कहा है। आपका फरमान है-

"अकथ कहाणी प्रेम की को प्रीतमु आखै आइ।
तिसु देवा मनु आपणा निवि निवि लागा पाइ।"

(सूही महला ४, पृष्ठ ७५४)

प्रेम-कहानी इसलिए अकथ है, क्योंकि जिसने इसका रस नहीं चखा है, वह इसे समझ नहीं सकते-

'कहिणै वाले तेरे रहे समाइ।'

श्री गुरू अर्जन देव जी ने इस रहस्य को, भेद को समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा है-

'पीओ अंम्रित नामु अमोलक जिउ चाखि गूंगा मुसकावत।'

(सारंग महला ५, पृष्ठ १२०५)

गूंगे आदमी को जब किसी मीठे पदार्थ का स्वाद अनुभव होता है तो वह तालियाँ बजा बजा कर हँसता, नाचता तथा चहकता है पर मुख से कुछ नहीं कह सका। ठीक यही दशा मस्ताने की होती है जो मुख से कम बोलता है पर हाल से बेहाल हो कर इस बात का प्रदर्शन अवश्य करता है कि उसको कोई अकथनीय रस प्राप्त हो रहा है।

गुरू जी का कथन है-

"माई री मनु मेरो मतवारो।

पेखि दइआल अनद सुख पूरन हरि रसि रपिओ खुमारो।"

(सारंग महला ५, पृष्ठ १२२५)

सर्वश्रेष्ठ भक्त कबीर जी को सूत्र पड़ा तो लोगों ने कहा कि कबीर बौरा (पागल) हो गया है। कबीर जी ने अपने बारे में लिखा है-

'लोगु कहै कबीरु बउराना। कबीर का मरमु राम पहिचाना।'

(भैरउ कबीर जीउ, पृष्ठ ११५८)

श्री गुरू नानक देव जी ने जब सूत्र का आर्दश दिखाया तो लोग कहने लगे 'यह खफती हो गया है, कमला हो गया है, जिन्न भूत का साया पड़ा लगता है, कोई रोग लग गया है आदि। गुरू जी ने हाँ में उत्तर देते हुए कहा कि-

'कोई आखै आदमी नानकु बेचारा।

भइआ दीवाना साह का नानकु बउराना।'

(वार महला १, पृष्ठ ९९१)

लोग इन नाम सूत्रों तथा मस्ती में मत्ते लोगों को चाहे कुछ

भी कहते रहें, परन्तु वह अपने रंग में हँसते, रंग में रोते एंवम् चुप की समाधी लगाए रखते हैं-

'रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि।
परवाह नाही किसे केरी बाझु सचे नाह।'

(आसा दी वार, पृष्ठ ४७३)

'हरि के दास हरि सेती राते। राम रसाइणि अनदिनु माते।'

(सूही महला ५)

'सदा रंगि राते तेरै चाए। हरि जीउ आपि वसै मनि आए।'

(बिलावल महला ३, पृष्ठ ७९८)

केशों का अपमान

कोई नामधारी सिक्ख सूत्र होने की दशा में, जब वह खुले केशों से झूमता है, नाचता है तथा इसी प्रकार की और क्रीडाएँ, चेष्टाएँ करता है तो कुसंगी एवम् शाक्त लोग कहा करते हैं कि 'यह केशों का सख्त अपमान है। पर उनको इस बात का ज्ञान नहीं है कि प्रेमावेश में दस्तार का सिर से उतर जाना, केशों का अपमान, निरादर नहीं होता। केशों का अनादर उस हालत में होता है जब कोई जानबूझ कर केशों को बिखेर कर नाचे, गाये। अनादर तब होता है जब गुरु जी की किसी आज्ञा का उल्लंघन करे परन्तु गुरु जी के शब्द-ज्ञान से प्रभावित होकर यदि सिक्ख शिष्य की इस प्रकार की दशा हो जाए तो सिर की तो बात ही क्या वह तन के सारे कपड़े तार-तार कर नंगा तक हो जाता है। गुरुमतानुसार ऐसा शिष्य शोभा का पात्र हो जाता है-

'नगन फिरत रंग एक कै ओह सोभा पाए।'

(पृष्ठ ७४५)

'केसा का करि चवरु ढ्लावां, चरण धूड़ि मुख लाई।'

(पृष्ठ ७४९)

श्री गुरु रामदास जी इस मस्त दशा के कारण को प्रकट करते हुए कहते हैं-

'अंतिर पिआस उठी प्रभ केरी सुणि गुर बचन मनि तीर लगाइआ।
मन की बिरथा मन ही जाणें, अवरु कि जाणै के पीर पराईआ।
राम गुरि मोहनि मोहि मनु लईआ,
हउ आकल विकल भई गुर देखे वढ लोट पोट होइ पईआ।'

(बिलावल महला ४, पृष्ठ ८३५-३६)

इन वाक्यों में लोट-पोट होने के दो कारण बताएं गए हैं-

१. गुरू जी का मन मोहन के दर्शन तथा

२. गुरु वचन रूपी तीर का लगना।

जिस समय किसी पक्षी को तीर लग जाए तो वह उल्टा-सीधा होकर धरती पर गिरता है। यही दशा उस जिज्ञासु की है जो गुरु के उपदेशरूपी बाण से लोट-पोट होकर तन से गिरता है। उस समय उसके हृदय में से सांसारिक सूझ-बूझ (सुध-बुध) निकल जाती है-

'गुरु सुंदर मोहनु पाइ करे हरि प्रेम बाणी मनु मारिआ।
मेरे हिरदे सुधि बुधि विसरि गई मन आसा चिंत विसारिआ।
मैं अंतरि वेदन प्रेम की गुर देखत मनु साधारिआ।

(सूही महला ४, पृष्ठ ७७६)

भक्त कबीर जी ने इस प्रेमरूपी बाण के प्रभाव का वर्णन इस प्रकार किया है-

'कबीर सतिगुर सूरमे बाहिया बानु जु एकु।
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेक।

(पृष्ठ १३७४)

अब विचार करने के योग्य बात यह है कि जो जिज्ञासु गुरुजी के मोहनी-दर्शन एवम् शब्द-बाण का निशाना होकर बाण खाये मृग की भाँति तड़प कर गिरता है, उसको सिर की दस्तार की सुध कैसे रह सकती है? पगड़ी तो कहीं रह जाती है और वह सिर से पांवों तक तामीज़ की सुध भी खो बैठता है। दीवान नन्दलाल जी अपने प्रियतम श्री कलगीधर जी के प्यार का निशाना बनकर, होश आने पर कहते हैं-

'सर पा शुदो पा सर करदर राहि मुहब्बत,

गोयेम वलेकिन सरो पा न शनसेम।'

(दीवानि गोइया)

हे प्रियतम! तुम्हारे प्रेममार्ग पर चलने का प्रभाव यह हुआ कि सिर पाँव हो गये तथा पाँव सिर। यह भी केवल कथन मात्र ही है। वास्तव में तो सिर एवम् पाँवों के अन्तर की पहचान ही नहीं रहती।

केशों का चँवर

श्री ग्रंथ साहिब में ऐसे बहुत कावि काव्य-पंक्तियाँ मिलती हैं जिनके द्वारा सतगुरु जी के चरण-कमलों पर केशों का चँवर डुलाने की प्रेरणा मिलती है-

१. "केश का करि चवरु दुलावा चरण धूड़ि मुखि लाई।"

(सूही महला ५)

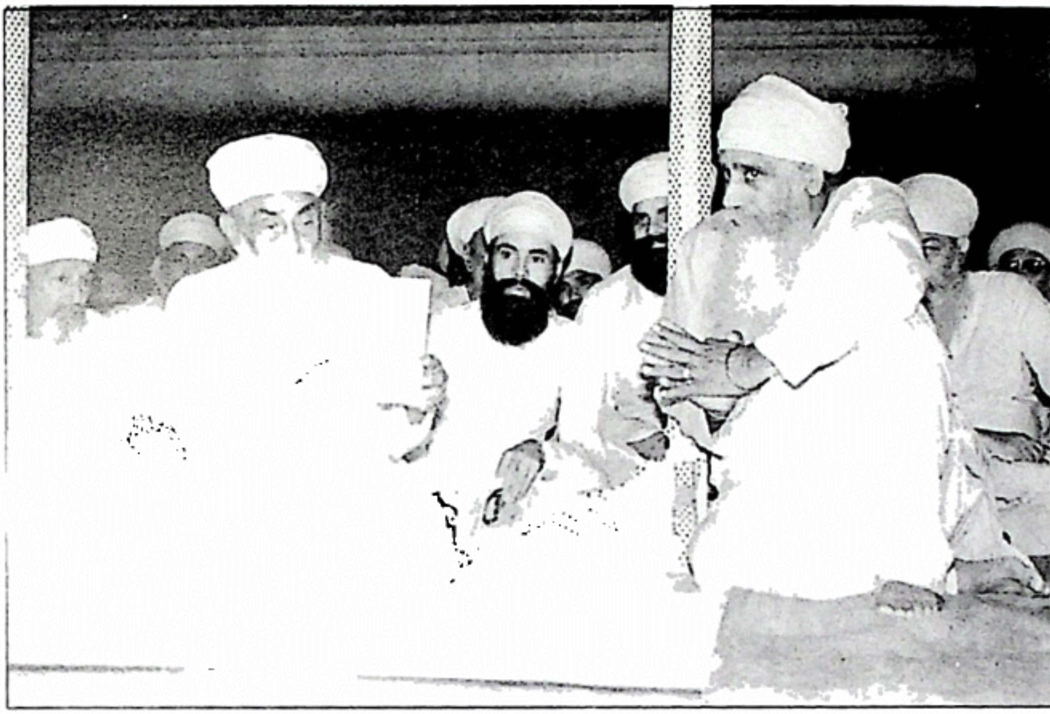
२. "केश करका बीजना संत चउवर ढुलावउ।"

(सूही महला ५)

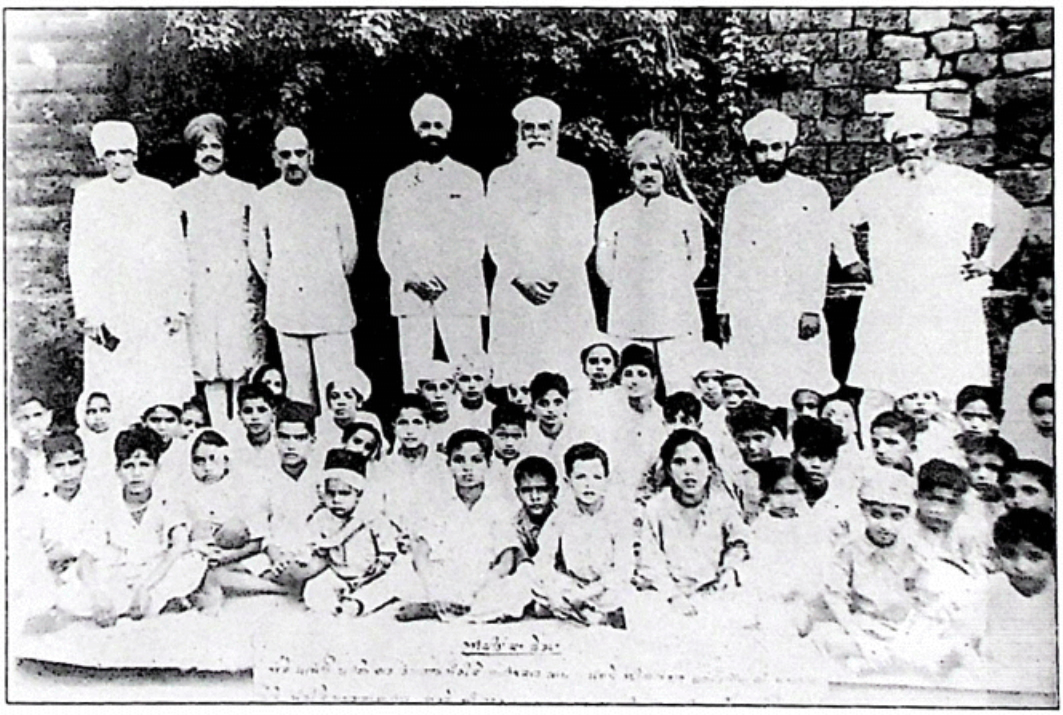
३. "छोड जाइ तउ छूटे नाहि। जउ सिंचै तउ तउ मनमाही।
इसही महि जिसकी पत राखै तिसु साधू चउर ढालीऐ।"

(मारू महला ५)

अब प्रश्न यह उठता है कि 'केशों का चँवर कैसे झूलता है?' प्राय: देखने में तो यही आता है लोग अपने अपने इष्टदेव पर चँवर तो झुलाते हैं परन्तु और जानवरों की पूँछ के बालों का या मोर पँखों का परन्तु अपने केशों का चंवर मस्तानों के बिना कोई भी नहीं झुला सकता।



श्री सत्‌गुरु जगजीत सिंह जी, आलिम जी रचित पुस्तक ''नामधारी सिद्धांत प्रदर्शन'' का विमोचन करने की कृपा कर रहे हैं। साथ बैठे हैं (हाथ जोड़ कर) टिक्का त्रिलोचन सिंह।



महाराजा मण्डी के महल में, साहित्यकार बच्चों के साथ श्री सतगुरु प्रताप सिंह जी, मण्डी महाराजा, सत्‌गुरु जगजीत सिंह जी, संत निधान सिंह आलिम तथा अन्य।



जलियांवाला बाग अमृतसर में श्री सत्गुरु प्रताप सिंह जी के साथ सन्त निधान सिंह आलिम तथा आल इण्डिया सिक्ख कांग्रेसमैन कनवैनशन के सदस्य - तिथि 17 दिसम्बर 1953.



श्री सत्गुरु प्रताप सिंह जी, आलिम जी तथा जींजा (यूगांडा) ईस्ट-अफ्रीका की साध संगत - 1953.